झलक 2016

भा कृ अनु प - केंद्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान की गृह पत्रिका

भा कृ अनु प-केंद्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान

विल्लिंगडन आईलैंड, सिफ्ट जंक्शन, मत्स्यपुरी पी.ओ., कोचिन - 682 029

भा कृ अनु प-केन्द्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान, कोचिन को 2014-15 के लिए राजर्षि टंडन राजभाषा पुरस्कार

(बाएं से दाएं : डॉ. त्रिलोचन महापात्र, सचिव, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग एवं महानिदेशक, भा कृ अनु प, डॉ. रविशंकर सी.एन., निदेशक, भा कृ अनु प-केन्द्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान, कोचिन, श्री परशोत्तम रूपाला, केन्द्रीय कृषि व किसान कल्याण तथा पंचायती राज राज्य मंत्री एवं श्री सुदर्शन भगत, केन्द्रीय कृषि व किसान कल्याण राज्य मंत्री, डॉ. पी. शंकर और डॉ. संतोष अलेक्स)

झलक
2016

भा कृ अनु प - केंद्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान की गृह पत्रिका

भा कृ अनु प - केंद्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान
विलिंगडन आइलैंड, मत्स्यपुरी पी.ओ.
कोचिन - 682 029, केरल (भारत)
ई.मेल : aris.cift@gmail.com

संपादक मंडल

1. **डॉ. पंकज किशोर**
   वैज्ञानिक, गुणता आश्वासन एवं प्रबंधन प्रभाग

2. **डॉ. अनुज कुमार**
   वैज्ञानिक, मत्स्य संसाधन प्रभाग

3. **डॉ. पारस नाथ झा**
   वैज्ञानिक, मत्स्यन प्रौद्योगिकी प्रभाग

4. **डॉ. संतोष अलेक्स**
   वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, हिंदी अनुभाग

5. **डॉ. पी. शंकर**
   वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, हिंदी अनुभाग

निदेशक, भा कृ अनु प - के मा प्रौ सं, कोचिन के द्वारा प्रकाशित
मुद्रण : प्रिन्ट एक्सप्रेस, कोचिन - 682 017

आमुख

केंद्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान से प्रकाशित झलक गृह पत्रिका का यह दूसरा अंक है। संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों को हिंदी भाषा में लिखने के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से इसे शुरू किया गया था। इसका प्रवेशांक काफी सफल रहा। सदस्य कर्मचारियों ने इसे बड़े प्यार से स्वीकारा। प्राप्त प्रतिक्रियाओं से यह पता चला कि उनमें हिंदी भाषा को लिखने एवं पढ़ने को लेकर काफी उत्साह हैं।

इस बार भी गृह पत्रिका में संस्थान के सभी संवर्गों के कर्मचारियों, उनके परिवार के सदस्यों, एवं शोधार्थियों की रचनाएं शामिल हैं। इससे सदस्यों की रचनात्मक क्षमताओं को विकसित करने का मौका मिलता है। इस अंक के सभी रचनाकारों को मैं बधाई देता हूँ।

झलक के दूसरे अंक के लिए राजभाषा अनुभाग के सदस्यों का प्रयास प्रशंसनीय है। पाठकों के सामने झलक 2016 को प्रस्तुत करने के साथ पाठकों की राय व मूल्यांकन का स्वागत करता हूँ।

डॉ. रविशंकर सी.एन.
निदेशक

संपादकीय समिति की ओर से

हिंदी भाषा की अपनी विशेषता है। भारत के अधिकांश लोगों द्वारा बोली, समझी और लिखी जानेवाली भाषा हिंदी है। केंद्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान, एक प्रौद्योगिकी संस्थान होने के बावजूद यहां कार्यरत सदस्य कर्मचारियों में हिंदी को लेकर काफी उत्साह दिखाई देता है। झलक गृह पत्रिका के प्रवेशांक को कर्मचारियों ने स्वीकारा। इस अंक में कविता, आलेख, अनुवाद आदि शामिल हैं। हम उन सभी रचनाकारों को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने रचनाएं देकर अपना सहयोग दिया। झलक 2016 को सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त खुशी हो रही है। इस पत्रिका में निरंतर सुधार के लिए आपके सुझावों और प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।

संपादक मंडल
आमुख
संपादकीय समिति की ओर से
लेख

क्रम सं	विषय		लेखक	पृष्ठ सं
1.	निवारक सर्तकता के लिए आंतरिक लेखा परीक्षा	:	के.एस. श्रीकुमारन	7
2.	कला, कल और आज	:	निम्मी एस. कुमार	9
3.	कनुप्रिया : एक मूल्यांकन	:	जय संतोष	11
4.	राष्ट्रभाषा हिंदी	:	डॉ. पंकज किशोर	14
5.	राजभाषा हिंदी	:	अविनाश आगवणे	16
6.	हम ऐसे क्यों हैं ? एक विडंबना	:	त्रिवेणी जी. अडिगा	17
7.	भारतीय संस्कृति की देन	:	हजारी प्रसाद द्विवेदी	18
8.	चिंतनधारा			26
9.	कार्यालय में स्वच्छता अभियान	:	दोमोदरा एम.एम.	27
10.	बापू	:	नवनीत के.	28
11.	मंजिल जरूर मिलेगी	:	हर्षवर्धन	29
12.	देवीमाँ	:	डॉ. पी. शंकर	30
13.	पतंग	:	डॉ. संतोष अलेकस	36
14.	गौतम बुद्ध के अनमोल विचार			44

निवारक सतर्कता के लिए आंतरिक लेखा परीक्षा

के.एस. श्रीकुमारन
वित्त एवं लेखा अधिकारी
भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं, कोचिन

मनुष्य का जीवन हमेशा उसकी ज़रूरतों और इच्छाओं से संबंद्धित रहा है। अपनी ज़िंदगी को बेहतर बनाने के लिए वह बहुत ज्यादा कमाना चाहता है। सभी को अच्छी जिंदगी नसीब नहीं होती। परन्तु हम अपने व्यक्तिगत विकास से ज़िंदगी खुशहाल बना सकते हैं। इसके विपरीत मनुष्य, आज उसके लिए कानूनी हो या गैर कानूनी, किसी भी राह को अपना विकल्प बनाते हैं।

भ्रष्ट और अनैतिक कार्यों के लिए कड़े नियम और साधन होते हुए भी हम व्यक्तिगत उपयोग के लिए सत्ता, पैसा और सरकारी तंत्र का दुरुपयोग करते हैं। सरकार की सेवाएं और उसकी योजनाओं का लाभ मिलना मुशिकल परन्तु नामुमकिन नहीं है। सरकार द्वारा प्रदत्त सेवाएँ जो माउस के दबाने से प्राप्त की जा सकती है, यहीं सरकारी कर्मचारियां जानबूझकर देरी कर देते हैं। हालांकि तत्काल जैसी सुविधाएं सरकार कार्यान्वित कर रही है, इसमें अतिरिक्त पैसा लगता है। इन कार्यों के लिए भी जन साधारण सरकारी कर्मचारियों को घूस देते हैं, ताकि जल्दी से काम हो जाए। जब एक समाज भ्रष्ट होता है और हर जगह भ्रष्टाचार है, तो इसे अचानक खत्म नहीं किया जा सकता। इस का एक ही तरीका है निवारक सतर्कता, ज्यादा सरकारी विकल्प तथा जन साधारण में जागरूकता पैदा करना है।

ज्यादातर मंत्रालय, विभाग और कार्यालयों में इस प्रकार के मामलों से जूझने के लिए सतर्कता स्कंध हैं। हालांकि वे अच्छा काम करते हैं, फिर भी हम इस समस्या को पूरी तरह से खत्म नहीं कर पाए। इसके जागरूक स्कंध को मजबूत बनाना हैं। प्रशासन प्रबंध में अनुसंधान और विकास विभाग जैसे सतर्कता स्कंध को महत्व देना है। लोगों को इस काम के लिए चुनकर प्रशिक्षण देना है।

जागरूकता स्कंध के अलावा विभागों के आंतरिक लेखा परीक्षा भी रोकथाम सतर्कता में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। चौकन्ना और कंपायमान आंतरिक लेखा परीक्षा, तंत्र में काफी प्रभावी होगी। आंतरिक लेखा परीक्षा की भूमिका यह है कि, इससे यह पता लगाया जा सकता है कि विभागों/कार्यालयों की गतिविधियाँ स्वीकृत नियमों और तरीकों के आधार पर हो रही है या नहीं। लेखा परीक्षा अधिकारी जो कि इस क्षेत्र में प्रशिक्षित और खास पहचान रखते हैं, वे पारदर्शी और गुणात्मक सुधार के तरीके बता सकते हैं। सामान एवं सेवाऐं ऐसे क्षेत्र हैं जहां अनैतिक गतिविधियां होती है। आंतरिक लेखा परीक्षा यह निरीक्षण करती है कि खरीददारी के सारे नियमों का पालन हुआ हो, सही खरीददारों को ख़रीददारी के आदेश दिये गये हों, शर्तों का पालन किया गया हो,

सही तरह से वितरण हुआ हो इत्यादि। साथ में वे यह भी आश्वासित करते है कि कोई अनचाही खरीददारी नहीं हुई हो, यथार्थ फंड का दुरुपयोग नहीं हुआ हो और क्या जो रुपये खर्च किए गए उस प्रकार से सामग्री मिली की नहीं। यह लेखा परीक्षा के समय होने वाले साधारण अभ्यास हैं, हालांकि उनकी भूमिका को यहां तक सीमित नहीं करनी चाहिए, अधिदेश को बदलना चाहिए। उन्हें सुझाव देना चाहिए ताकि भष्टाचार को रोका जा सके। एक सहजपूर्ण बात जो लेखा परीक्षा के दौरान देखी गयी है कि सरकार और ठेकेदारों के बीच की शर्ते स्थिर रहती है। जब तक कोई समस्या नहीं आ जाए कई विभाग इन तरीकों और अभ्यासों का पुनरीक्षण नहीं करते है। हमारा समाज जैविक और ज़िंदा है। सामाजिक ज़रूरतें, वैधिक कार्य और मनुष्य के सोच में बदलाव हुए हैं। आस-पास के बदलावों के साथ आपूर्ति और काम के शर्तों का नियमित रूप से पुनरीक्षण करने की ज़रूरत है। आंतरिक लेखा परीक्षक यह बता पाएं कि संविदा में कोई शर्त बदलनी चाहिए या नहीं। यह भी बताएं कि यदि उपयुक्त कारवाई न की जाए तो क्या खतरा हो सकता है।

एक अन्य क्षेत्र जहां निरंतर ध्यान देने कि जरूरत है वह माल की आपूर्ति है। मंत्रालय और विभाग दैनिक कार्यकलापों के लिए बड़ी मात्रा में माल खरीदते हैं। शोध और विकास संस्थान रसायन, कांच की वस्तुएं और खर्चीले उपकरण शोध और विकास के लिए खरीदते हैं। यह एक जगह है जहाँ काफी ग़डबड़ी होती है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि आपूर्ति की जा रही सामग्री आपूर्ति में बतायी गयी सामग्री ही है। परिमाण और आपूर्ति की अवधि पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। ठेकेदारों को चाहिए कि वे माल को साइट पर दें और वरिष्ठ अधिकारियों के समक्ष रसीद प्राप्त कर लें। उसी प्रकार केंद्रीय स्टाक से अन्य जगहों तक इसका सही वितरण भी होना चाहिए। विभागों तक इसके पहुँचने के बाद इसके वितरण पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। आंतरिक लेखा परीक्षक इस पर ध्यान दें कि यहाँ पर गलत उपयोग न हों।

आंतरिक लेखा परीक्षक हर तिमाही में उप कार्यालयों का दौरा सुनिश्चित करें। एक अन्य महत्वपूर्ण काम जो आंतरिक लेखा परीक्षकों को करना है वह है ऋणदाताओं की सूची का पुनरीक्षण। ठेकेदारों को, समय पर पैसा न देकर ठगा जा सकता है। ठेकेदारों को जो पहले आया है उनको पहले भुगतान करनी चाहिए। यदि बिना वजह भुगतान नहीं किया जा रहा है तो इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। कोई समस्या है तो सतर्कता स्कंध के अधिकारियों के नज़र में इसे लाना चाहिए।

लेखा परीक्षक और सतर्कता विभाग में भिन्न अधिदेश होते हैं लेकिन दोनों का लक्ष्य एक है। दोनों संस्थानों के गतिविधियों के नियमानुसार काम करते हैं। यह निष्पादन बढ़ाता है और तंत्र को भ्रष्टाचार मुक्त करता है। यदि लेखा परीक्षा और सतर्कता अधिकारियों की एक टीम हों तो यह किसी भी विभाग में उपयोगी होगी।

सूचना प्रौद्योगिकी के आने से भारत में भ्रष्ट्राचार दूर करने की संभावना है। भारत उन देशों में एक है जिसने सूचना प्रौद्योगिकी की संभावनाओं का उपयोग किया है। ई-शासन, ई-प्राप्तकीकरण और ई-भुगतान से काफ़ी फायदें हैं। सरकार के कार्यक्रम और सुविधा जरूरतमंदों तक पहुँचे। हम एक साथ इसके लिए काम करें।

कला - कल और आज

श्रीमती निम्मी एस. कुमार
तकनीकी सहायक (हिन्दी अनुवादक)
वेरावल अनुसंधान केंद्र
भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं, वेरावल

कला शब्द सुनते ही हमारे मन में मन बहलाने की चीज़, ऐसा विचार उत्पन्न होता है। लेकिन क्या हमने कभी सोचा है की सच्ची कला क्या है, इसका लक्ष्य क्या होना चाहिए, सच्ची कला कैसी होनी चाहिए ...? शायद इसका जवाब ज्यादातर न ही होगा। पुराने ज़माने से हम सुनते आए हैं कि कला या साहित्य समाज का दर्पण है। अगर ऐसा है तो क्या तत्कालीन कला विधाएं समाज का दर्पण है? यह विषय चिंतनीय है, क्योंकि तत्कालीन कला विधाओं में, माफ कीजिएगा न्यू जेनेरेशन आर्ट फार्म्स में सब कहीं बीप साउण्ड ही सुनाई पड़ते है। आजकल का ट्रेंड ही ऐसा है। आज जिसमें अतियथार्थवाद दिखाने के लिए गालियों की बरसात हो, उसे ही न्यू जेनेरेशन आर्ट फार्म्स, श्रेष्ठ कला के रूप में स्वीकारते हैं।

असली कला तो वह है जो मनुष्य को रोग, शोक और अज्ञान से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार कराती है और अपने ही संस्कार की जड़ की ओर ले जाती है। यही सच्ची कला की एकमात्र कसौटी है। कलाकार को अतियथार्थवाद या कल्पना लोक में विचरण करने के बदले ठोस समाज की वास्तविकताओं को जानकर अपने कला को हथियार बनाकर समाज की समस्याओं का हल निकालना चाहिए। हम इस बात से अनभिज्ञ है कि विश्व की तमाम घटनाओं के पीछे कलम का महत्वपूर्ण योगदान है। इसलिए कहा जाता है कि Pen is mightier than sword। स्त्री को चार दीवारों के बंधन को तोड़कर आगे निकलने की प्रेरणा इसी कलम ने दी है। सच्चे कलाकार जब कलम छलकाते है तब वास्तव में रचना का जन्म नहीं बल्कि इतिहास का जन्म होता है। आजकल ज़्यादातर साहित्य में न्यू जेनेरेशन आर्ट फार्म्स के नाम पर सच्ची कला के वास्तविक मूल्यों की मारकाट हो रही है।

फिल्म और नाटक जैसे दृश्यों में भी कला का हाल कुछ अलग नहीं है। जहां पुराने जमाने के फिल्मों में देश प्रेम, भाईचारा, पारिवारिक मूल्यों को दिखाते थे, वहीं अब की फिल्मों में तो बीप साउण्ड के बजाय और कुछ सुनायी नहीं देता है। ... न्यू जेनेरेशन फिल्म है न ? स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अनपढ़ लोगों में वास्तविकता का बोध कराने के लिए कलाकारों ने नाटक का सहारा लिया; जिनसे

प्रेरित होकर लोग राष्ट्र के लिए अपनी जान की कुर्बानी देने के लिए निकले। वही श्रेष्ठ कला आज युवजनोत्सव या नाटकोत्सव के स्टेज तक सीमित रही है। सफदर हश्मी जैसे कलाकार ने नाटक के जरिए अमरीका जैसे राज्य द्वारा हमारे भारतीयों की जाती व्यवस्था का दुरुपयोग करके लोगों की भावनाओं को हथियार बनाते है इसका खुला चित्रण किया है। इनके नाटकों में सच्चाई की इतनी तीव्रता थी कि नाटक खेलते समय सामूहिक विद्रोहियों ने इन पर गोली चला दी। नृत्य विधा की हालत भी कुछ कम नहीं है। हमारे देश के प्रत्येक राज्य के लिए प्रत्येक नृत्य का रूप है। पहले सब लोग भक्ति प्रेम के साथ उनका अध्ययन करते थे। लेकिन अब नृत्य अधिकतर न्यू जेनेरेशन को प्रतिभा बनने का एक माध्यम ही है। उनका सच्चा प्रेम तो शीला की जवानी पर है। कथकली जैसे परंपरागत कला रूप विदेशियों के मन बहलाने का एक साधन बन गया है।

आजकल संगीत और कविता का हाल तो बेहाल हो गया है। पांच साल पहले तक हम सिर दर्द दूर करने के लिए संगीत सुनते थे। रही बात आजकल के गानों की, इसमें कौन सा गाना देशी है या कौन सा विदेशी यह किसी को नहीं पता।

इन सब मुद्दों से तो एक बात व्यक्त है भारतीय संस्कृति, विश्व की सबसे महत्वपूर्ण संस्कृति है। हमारे कला रूप भी इसी संस्कृति से जुड़े है। लेकिन उस अनमोल संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा है। विश्व की प्रत्येक संस्कृति में बहुत सारी अच्छाईयाँ है; लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हमारे संस्कृति को तोड़ फोड़कर उनके संस्कृति को ऊपर दिखाए। यह सब कहने का यह मतलब नहीं है कि सारा का सारा कला रूप अपनी पारंपरिक एवं सांस्कृतिक मौलिकता से दूर हो गया है बल्कि थोड़ा बहुत उन मूल्यों से अलग होने लगा है। इसलिए हम जैसे आस्वादकों को ऐसी कला को प्रोत्साहित करना चाहिए जो मनुष्य को रोग, शोक और अज्ञान से बचा दे। इसका प्रमाण है कला रूपों को सिर्फ मनोरंजन के लिए न बनाकर बल्कि जीवन के लिए भी अनिवार्य बना दिया जाए। जैसे म्यूज़िक थेरापी और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए नृत्य अभ्यास करना आदि। इसलिए कलाकारों से हमें यही कहना है :

कल्पना से आज तक उड़ते रहे तुम।
साधना से सिहरकर मुड़ते रहे तुम।।

इसलिए अति कल्पना के बिना सच्ची साधना के साथ कला को मनुष्य में मानवीय मूल्य जगाने के लिए, समाज में सामाजिकता जगाने के लिए एवं विश्व में आनंद भरने हेतु प्रयोग करना चाहिए।

कनुप्रिया : एक मूल्यांकन

जय संतोष
W/o संतोष अलेक्स
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
राजभाषा अनुभाग
भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं, कोचिन

देश काल और पात्रों के परिवेश से आबद्ध होकर भी साहित्य अपने आपको सदैव देशातीत, कालातीत और सार्वजनीन बनाए रखने की प्रक्रिया में ही आप्तकाम होता है। वर्तमान में ख़डे होकर साहित्य की जड़ें अतीत तक पहुंचती हैं और उसका समग्र विकास प्रस्फुटन, पल्लवन और प्रतिफलन अनागत भविष्य के द्वार पर निरंतर अपनी दस्तकें देता रहता है। वहां वह काल के कृत्रिम बंधनों से मुक्ति का आकांक्षी भी है। अपनी इसी विशेषता के कारण रामायण, महाभारत और मेघदूत जैसी कृतियाँ आज भी चिरनवीन बनी हुई हैं। साहित्य अपनी चिरंतनता में समकालीनता और आधुनिकता की प्रतिश्रुतियों का भी बखूबी निर्वाह करता रहता है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कविता को केन्द्र में रखते हुए साहित्य में नए पुराने का विमर्श जिस तीव्रता से हुआ उसके फलस्वरूप अधायुग, संशय की एक रात, शंबूक, आत्मजयी और कनुप्रिया जैसे दर्जनों पुस्तकें प्रकाश में आई जिनके पात्र और घटनाएँ भले ही पुराने थे किन्तु उनके रचनाकारों का दृष्टिकोण आधुनिक था। कीरकेगाद हैडेगर, नीत्यो, जैस्पर्श, टी.एस. एलियट, कामू और काफका जैसे पाश्चात्य दार्शनिकों के विचारों ने इन रचनाकारों की दृष्टि को और भी व्यापक, पाश्चात्योन्मुख तथा समसामयिक दृष्टि से प्रांसंगिक बनाया।

सिद्धांततः यर्थाथवादी और आधुनिकतावादी होकर भी भारती अपनी सृजनात्मकता में रोमानी संस्कारों से अभिभूत रहा है। चाहे ''ठंडा लोहे'' के गीत हो अथवा ''गुनाहों का देवता'' जैसा अपने समय का लोकप्रिय और बेस्ट सेलर उपन्यास हों अथवा ''सात गीतवर्ष'' के कतिपय गीत सभी इस तथ्य के सबूत है कि भारती एक रोमांटिक रचनाकार है।

भले ही बौद्धिकता के निकष पर रोमानियत एक हल्की फुल्की चीज़ हो किंतु हर सृजनधर्मी व्यक्ति के लिए रोमांस एक मूल्य है। ज़िंदगी के उबड़ खाबड़ जंगल में रूमान फूलों की एक छोटी सी वादी है, मरूस्थल में एक नखलिस्तान है, अविराम यात्रा पथ पर पल भर ठहरने के लिए एक विश्राम बिंदू है, रूढि जर्जर पुरातनता के सम्मुख रचनात्मक विद्रोह की एक रागदीप्त पहल है। सत्य को सुंदर बनाने के लिए कलामयी प्रक्रिया है रोमांस।

प्रत्येक कवि थोड़ी बहुत मात्रा में रोमानी स्वभाव का होता है तभी तो उसका संप्रेक्षण सार्वजनीन हो पाता है। कालिदास, विद्यापति, निराला, सभी अपनी अपनी किस्म के रोमांटिक रचनाकार ही थे। हमारे यहाँ राधा और कृष्ण की जोड़ी को रोमांस का उदात्त और आदर्श प्रतीक माना जाता है। कहना न होगा कि भावनात्मक स्तर पर यदि हर पुरुष में कृष्ण तत्व हैं तो हर नारी में एक राधा छिपी बैठी है। पुरुष यदि सत्य है तो नारी सुंदर है और इन दोनों का समुच्चय ही शिव है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारती ने कनुप्रिया में नर एवं नारी के शाश्वत आकर्षण को चित्रित किया है।

कनुप्रिया में कवि ने राधा एवं कृष्ण के प्रणय के मनःस्थितियों की विविधता प्रस्तुत किया है। इसका स्पष्टीकरण भूमिका में कवि के इस कथन से स्पष्ट होता है।

लेकिन ऐसे भी क्षण होते है जब हमें लगता है कि यह सब जो बाहर का उद्वेग है महत्व उसका है जो हमारे अंदर साक्षात्कृत होता है ....

प्रारंभ में एक विभूत पथ पर खड़े छायादार अशोक वृक्ष को राधा ने संबोधित करते हुए कही कि उसे पुष्प पुलकित करने की प्रक्रिया में अनंत बार धूल में मिली है और उसके कठोर तन के रेशों में कली, कोंपल, सौरभ और लाली बनकर चुपके से सो गई है। उसके जिस्म के सितार से झंकृत होते स्वर्णिम संगीत में कृष्ण का ही निवास है। कृष्ण ने उसकी निवेदित प्रणाम मुद्राओं को, अंगभंगिमाओं और गति को स्वयं में बांध लिया है। राधा और कृष्ण का प्रथम परिचय धीरे-धीरे नित्य मिलन के चिद्विलास में मिल जाता है। एक दिन खेल ही खेल में कृष्ण राधा की कुमारी पगडंडी सी उजली मांग को आम्रमंजरियों से भर देते हैं। मिलन के चरम एकांत क्षणों में कृष्ण राधा स्वयं को उनकी परिणीता मान लेती है। मिलन के चरम एकांत क्षणों में कृष्ण राधा को प्रायः यही समझाते हैं कि तुम्हारे अधर, तुम्हारी पलकें, तुम्हारी बाहें, तुम्हारे चरण, तुम्हारे अंग प्रत्यंग, तुम्हारी सारी चंपकवाणी देह, मात्र पगडंडियाँ हैं जो चरम साक्षात्कार के क्षणों में रहती नहीं रीत रीत जाती हैं। राधा के लिए कृष्णा का व्यक्तित्व एक ऐसा नीला समुद्र है जिसमें उसने स्वयं को एक नदी की भांति निमग्न कर लिया है। कृष्ण की संपूर्ण इच्छाओं का अर्थ है राधा।

पूर्व राग में दिखाई देती राधा जो कनु की अंतरंग के लिए सखी थी इतिहास खंड तक आते आते बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चांद, रीते हुए पत्र और बीते हुए क्षण जैसे जिस्म वाली होकर रह जाती है। अब उसके पास टूटे हुए दर्पण जैसे शरीर और याद के अतिरिक्त कुछ नहीं बचा है। जिस आम की मंजरियों से कनु ने कभी उसकी मांग भरी थी, उसकी छांह में बैठकर वह धूल पर अपने कनु का नाम लिखती रहती है। जिस राह से वह कभी अपने कनु को देवता समझकर प्रणाम करने के बाद घर लौटा करती थी। आज वहां उजड़े हुए कुंज, रौंदी हुई लताएं, आकाश पर छाई हुई धूल उसे यही बताती है कि इधर से द्वारिकाधीश (कनु नहीं) की अठारह अक्षौणी सेनांए गुजरी हैं। पथवर्ती आम्र गाछ की शाखाएं इसलिए काट दी गई कि उन युद्धोन्मुत सेनाओं के गुजरने में वे शाखाएँ बाधक बनती थी। छायादार अशोक को भी इसलिए खंड-खंड कर दिया गया। सेना की शोभायात्रा को देखकर राधा को लगता है कि वह और उसका प्यार दोनों ही अपरिचित की तरह पीछे छोड़ दिए गए हैं।

महाभारत के युद्ध के समय मोहग्रस्त अर्जुन को कृष्ण ने जिन शब्दों में उपदेश दिया था भोलीभाली विप्रलब्धा राधा के लिए वे शब्द अपना अर्थ खो चुके हैं। वह तो कनु के प्रेमोपदेश की अभिलाषिणी बनी रहना चाहती है। धारा में बहते हुए टूटे रथों और जर्जर पताकाएं, हारने-जीतने वाली सेनाओं के करुण चीत्कार और दर्द भरे उद्घोष और युद्ध काल में घटित अमानवीय और नृशंसतापूर्ण कुकृत्यों में उसकी कोई रुचि नहीं हैं। उसके लिए यह सब निरर्थक है। युद्धजनित विध्वंस में इतिहास भी पंगु होकर बैसाखियों पर चलने लगता है। जब कौरव और पांडव दोनों ही युद्ध के लिए कृतसंकल्प हो गए तभी विफलता बोध से ग्रस्त कृष्णा को राधा की स्मृति आई होगी। तभी चारों ओर खिन्न दृष्टि से निहारकर गहरी सांस लेते हुए कृष्ण ने असफल इतिहास को एक जीर्ण वस्तु की भांति त्यागा होगा।

जैसे जैसे कनुप्रिया की कथा अपने अवसान बिंदु की दिशा में बढती है, वैसे वैसे कनुप्रिया राधिका के अंतरंग में बैठी हुई अपने अधिकारों को पाने के प्रति सजग और सक्रिय राधा का उद्भव होता जाता है। यह राधा कृष्ण के वियोग में अश्रुपात करनेवाली न होकर कृष्ण से परिवाद और उपालंभ की मुद्रा में कहती है।

तुमने मुझे पुकारा था न
मैं आ गई हूँ कनु।
और जन्मांतरों की अनंत पगड़ंडी के
कठिनतम मोड़ पर खड़ी होकर
तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ
सुनो मेरे प्यार।
प्रगाढ़ के क्षणों में अपनी अंतरंग
सखी को तुमने बाहों में गूंथा
पर उसे इतिहास में गूंथने से हिचक क्यों गए प्रभु ?

कनुप्रिया की राधा को परंपरागत राधा से तादाम्य स्थापित नहीं किया जा सकता। भारती की राधा तो प्रत्येक क्षण का अनुभव करती है। कवि ने प्रणय संवेदन के माध्यम से जीवन को समझने का प्रयत्न किया है।

कनुप्रिया में कथ्य और शिल्प पक्ष इतने संशिलष्ट रूप में एक दूसरे से मिले होते है कि दोनों का अलग से विवेचन नहीं किया जा सकता। भाषा, शैली, प्रतीक बिंबों में भी कवि ने नए प्रयोग किए हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कनुप्रिया की कथा भारतीय नारीत्व की अस्मिता को एक नया संदर्भ, नया आयाम और नया अर्थ देने में पूर्णतः सफल होती है।

राष्ट्रभाषा हिंदी

डॉ. पंकज किशोर
वैज्ञानिक
गुणता आश्वासन एवं प्रबंधन प्रभाग
भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं, कोचिन

भाषा के द्वारा मनुष्य अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है। अपनी बात को कहने के लिए और दूसरों की बात को समझने के लिए भाषा एक सशक्त साधन है।

जब मनुष्य इस पृथ्वी पर आकर होश सम्भालता है तब उसके माता-पिता उसे अपनी भाषा में बोलना सिखाते हैं। इस तरह भाषा सिखाने का यह काम लगातार चलता रहता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी अलग-अलग भाषाएं होती हैं। लेकिन उनका राजकार्य जिस भाषा में होता है और जो जन सम्पर्क की भाषा होती है उसे ही राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त होता है।

भारत में भी अनेक राज्य हैं। उन राज्यों की अपनी अलग-अलग भाषाएं हैं। इस प्रकार भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है, लेकिन उसकी अपनी एक राष्ट्रभाषा है हिन्दी। 14 सितंबर 1949 को हिन्दी को यह गौरव प्राप्त हुआ। 26 जनवरी 1950 को भारत का अपना संविधान बना। हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया। यह माना कि धीरे-धीरे हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी और अंग्रेजी पर हिन्दी का प्रभुत्व होगा।

आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी हिन्दी को जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिए था वह उसे नहीं मिला। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि हिन्दी को उस का यह स्थान कैसे दिलाया जाए? कौन से ऐसे उपाय किए जाएं जिससे हम अपने लक्ष्य तक पहुँच सकें।

यद्यपि हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी है, परन्तु हमारा चिंतन आज भी विदेशी है। हम वार्तालाप करते

समय अंग्रेजी का प्रयोग करने में गौरव समझते हैं, भले ही अशुध्द अंग्रेजी हो। हमें इस मानसिकता का परित्याग करना चाहिए और हिन्दी का प्रयोग करने में गर्व अनुभव करना चाहिए। हम सरकारी कार्यालय, बैंक, अथवा जहां भी कार्य करते हैं, हमें हिन्दी में ही कार्य करना चाहिए। निमन्त्रण पत्र, नामपट्ट हिन्दी में होने चाहिए। अदालतों का कार्य हिन्दी में होना चाहिए। बिजली, पानी, गृह कर आदि के बिल जनता को हिन्दी में दिये जाने चाहिए। इससे हिन्दी का प्रचार और प्रसार होगा।

प्राथमिक स्तर से स्नातक तक हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जानी चाहिए।

जब विश्व के अन्य देश अपनी मातृभाषा में पढ़कर उन्नति कर सकते हैं, तब हमें राष्ट्र भाषा अपनाने में झिझक क्यों होनी चाहिए। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पत्र व्यवहार हिन्दी में होना चाहिए। स्कूल के छात्रों को हिन्दी पत्र-पत्रिकाएं पढ़ने की प्रेरणा देनी चाहिए। जब हमारे विद्यार्थी हिन्दी प्रेमी बन जायेंगे तब हिन्दी का धारावाह प्रसार होगा। हिन्दी दिवस के अवसर पर हमें संकल्प लेना चाहिए।

राजभाषा हिन्दी

अविनाश आगवणे
सहायक
भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं
मुंबई अनुसंधान केंद्र, मुंबई

भारत देश में कई भाषाएं बोली जाती है। 14 सितंबर 1949, को संविधान सभा ने हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था। इसलिए भारत संघ की राजभाषा हिन्दी है और उसे राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। भारत मिश्रित भाषाओं का एक विशाल देश है, इन सभी भाषाओं के बीच में हिन्दी एक संपर्क भाषा है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक एवं द्वारिका से पुरी तक सभी भारतवासी को एक करना है।

हिन्दी भाषा, प्रशासन व जनता में एक अच्छा रिश्ता बनानेवाला माध्यम है। इसलिए केन्द्र के सभी कार्यालयों में हिन्दी में कामकाज हो रहा है। भारत सरकार हिन्दी में कामकाज के बढ़ावे के लिए अनेक प्रयास कर रही है।

केन्द्र के अनेक सरकारी कार्यालयों में अधिकारी तथा कर्मचारीगण कार्यालयीन कामकाज हिन्दी में करते है। सभी गण हिन्दी में पढ़ते हैं, बातचीत हिन्दी में करते है, पर उनके मन में यह डर हो जाता है की कामकाज में हिन्दी का उपयोग किस तरह से करें ? उन्हें यह डर लगा रहता है, कि जितना अंग्रेजी में कामकाज होता है उतना हिन्दी में नहीं होगा उस डर को निकालने का एक आसान तरीका यह है कि हम अपनी सोच (विचार) हिन्दी में करेंगे तो हिन्दी के शब्द अपने आप कागज पर लिखते जायेंगे। कामकाज के बारे में विचार हिन्दी में हो तो हिन्दी में कामकाज करना बहुत आसान हो जाएगा। हमें यह विश्वास होना चाहिए की हिन्दी एक बहुत ही प्रभावी एवं सरल भाषा है। हमें हिन्दी में टिप्पणियां करते समय गर्व का अनुभव होना चाहिए, भले सीधी सुलभ भाषा ही सही, परन्तु प्रयास हमें जारी रखना चाहिए। कार्यालय में फ़ायल का कामकाज करने वाले कर्मचारी अपने विचारों को सरल हिन्दी भाषा में लिखेंगे तो, उसी सरल हिन्दी भाषा का उपयोग आनेवाले नये कर्मचारी कामकाज में प्रयोग करेंगे, तो फिर हिन्दी के कामकाज को और ज्यादा बढ़ावा मिलेगा। हम सब को एक साथ होकर हिन्दी का प्रसार एवं हिन्दी में कामकाज के लिए अधिक गति प्रदान करनी चाहिए।

हम ऐसे क्यों है ? एक विडंबना

त्रिवेणी जी. अडिगा
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं
मुंबई अनुसंधान केंद्र, मुंबई

पुराने जमाने से मनुष्य संघ जीवी था, मनुष्य अपने कुटुंब के लोगों और आसपास के लोगों से भी प्रेम व स्नेह से व्यवहार करता था। ईर्ष्या, द्वेष, घमंड का अभाव था। आज सभी क्षेत्रों में हमारा भारत देश बहुत आगे है। बाकी देशों से कुछ कम नहीं है भारत। सभी कोनों से उन्नति की ओर बढ़ रहा है, विज्ञान में भी बहुत आविष्कार हो चुके है और हो भी रहें है। क्या आपको यह नहीं लगता? इतना प्रगति पाया मानव कुछ मूलभूत संस्कार भूल चुका है?

आज के समाज में लोग एक दूसरे का हित छोड़, ईर्ष्या, द्वेष से देखने लगे हैं? एक दूसरे के ऊपर विश्वास की कमी हो रही है? प्रेम भाव का अभाव? हमेशा किसी न किसी का पांव खींचने की कोशिश में लगे रहते हैं। वे मानव जन्म पाकर भी मानवीय धर्म छोड़ रहे है, मानवीयता नष्ट हो रही है। ज़िंदगी में यश पाना अच्छी बात है और उसे पाने के लिए हम सबको कोशिश करनी चाहिए। लेकिन यश की सीढ़ी चढ़ने के लिए क्या आम आदमी का दिल तोड़ना जरूरी है? आज मानव में मानवीयता न के बराबर है। वह दिन ब दिन मनुष्य से हैवान होता जा रहा है।

मानवीयता को ही भूलकर व्यवहार करना यह क्या अच्छी बात है? क्या आपको लगता है यदि मनुष्य इस प्रकार का बरताव करेगा तो मानव जाति का भला होगा? क्या ऐसे में भारत देश सही अर्थ में प्रगति पाएगा?

भारतीय संस्कृति की देन

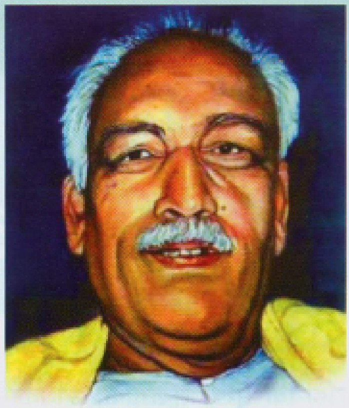

हजारी प्रसाद द्विवेदी

भारतीय संस्कृति पर कुछ कहने से पहले मैं एक निवेदन कर देना कर्त्तव्य समझता हूँ कि मैं संस्कृति को किसी देश विदेश या जाति विशेष की अपनी मौलिकता नहीं मानता। मेरे विचार से सारे संसार के मनुष्यों की एक सामान्य मानव - संस्कृति हो सकती है। यह दूसरी बात है कि व्यापक संस्कृति अब तक सारे संसार में अनुभूत और अंगीकृत नहीं हो सकी है। नाना ऐतिहासिक परम्पराओं के भीतर से गुजरकर और भौगोलिक परिस्थितियों में रहकर संसार के भिन्न-भिन्न समुदायों ने उस महान मानवी संस्कृति के भिन्न-भिन्न पहलुओं का साक्षात्कार किया है। नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा-भक्ति तथा योगमूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य उस महान सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है, जिसे हम संस्कृति शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं। यह संस्कृति शब्द बहुत अधिक प्रचलित है, तथापि यह अस्पष्ट रूप में ही समझा जाता है। इसकी सर्वसम्मत कोई परिभाषा नहीं बन सकी है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि और संस्कारों के अनुसार इसका अर्थ समझ लेता है। फिर इसको एकदम अस्पष्ट भी नहीं कह सकते, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जानता है कि मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है। इसकी अस्पष्टता का कारण यही है कि अब भी मनुष्य इसके सम्पूर्ण और व्यापक रूप को देख नहीं सका है। संसार के सभी महान तत्व इसी प्रकार मानव चित्त में अस्पष्ट रूप से आभासित होते हैं। उनका आभासित होना ही उनकी सत्ता का प्रमाण है। मनुष्य की श्रेष्ठतर मान्यताएँ केवल अनुभूत होकर ही अपनी महिमा सूचित करती है। उनको स्पष्ट और सुव्यवस्थित परिभाषा में बाँधना सब समय सम्भव नहीं होता है। केवल नेति नेति कहकर ही मनुष्य ने उस अनुभूति को प्रकाशित किया है। अपनी चरम सत्यानुभूति को प्रकट करते समय कबीरदास ने इसी प्रकार की विवशता का अनुभव करते हुए कहा था ऐसा लो नहिं तैसा लो, मैं केहि विधि कहौं अनुठा लो मनुष्य की सामान्य संस्कृति भी बहुत कुछ ऐसी ही अनूठी वस्तु है। मनुष्य ने उसे अभी तक सम्पूर्ण पाया नहीं है। पर उसे पाने के लिए व्यग्र भाव से उद्योग कर रहा है। यह मारकाट, नोंचखसोट और झग़ड़ा डांट भी उसी प्रयत्न के अंग हैं। आपको यह बात बहुत विरोधाभास सी लगेगी, पर है सत्य। रास्ता खोजते समय भटक जाना, थक जाना या झुँझला पड़ना, इस बात के सबूत नहीं हैं कि रास्ता खोजने की इच्छा ही नहीं है। कविवर रवीन्द्रनाथ ने अपनी कवि जनोचित भाषा में इस बात को इस प्रकार कहा है कि यह जो लुहार

की दूकान की खटाखट और धूलधक्कड़ है, इनसे घबराने की ज़रूरत नहीं है। वहाँ वीणा के तार तैयार हो रहे हैं। जब ये तार बन जायेंगे तो एक दिन इनकी मधुर संगीत ध्वनि से निश्चय ही मन और प्राण तृप्त हो जायँगे। ये युद्धविग्रह, ये कूटनीतिक दाँव पेंच, ये दमन और शोषण के साधन, ये सब एक दिन समाप्त हो जायँगे। मनुष्य दिन-दिन अपने महान लक्ष्य के नज़दीक पहुँचता जायगा। सामान्य मानवसंस्कृति ऐसा ही दुर्लभ लक्ष्य है। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक देश और जाति ने अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार उस महान् लक्ष्य के किसी न किसी पहलू का अवश्य साक्षात्कार किया है। ज्यों ज्यों वैज्ञानिक साधनों के परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न देश और भिन्न-भिन्न जातियाँ एक दूसरे के नजदीक आती जायँगी, त्यों त्यों इन असत्यों की सार्थकता प्रकट होती जायगी और हम सामान्य व्यापक सत्य को पाती जाएँगी। आज की मारामारी इसमें थोड़ी रुकावट डाल सकती है, पर इस प्रयत्न को निशेष भाव से समाप्त नहीं कर सकती। अपने इस विश्वास का कारण मैं आगे बताने का प्रयत्न करूँगा।

जो आदमी ऐसा विश्वास करता है, उससे संस्कृति के साथ भारतीय विशेषण जोड़ने का अर्थ पूछना नितांत संगत है; क्या भारतीय से मतलब भारतवर्ष के समस्त अच्छे बुरे प्रयत्न और संस्कार है? नहीं समस्त भारतीय संस्कार अच्छे ही है या मनुष्य की सर्वोत्तम साधना की और अग्रसर करने वाले ही हैं, ऐसा मैं नहीं मानता। ऐसा देखा गया है कि एक जाति ने जिस बात को अपना अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार माना है, वह दूसरी जाति की सर्वोत्तम साधना के साथ मेल नहीं खाता। ऐसा भी हो सकता है कि एक जाति के संस्कार दूसरी जाति के संस्कार के एकदम उलटे पड़ते हों। हो सकता है कि एक जाति मंदिरों और मूर्तियों के निर्माण में ही अपनी कृतार्थता मानती हो और यह भी हो सकता है कि दूसरी जाति उनको तोड़ डालने को ही अपनी चरम सार्थकता मानती हो। ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। ऐसे स्थलों पर विचार करने की आवश्यकता होगी। श्रेष्ठ लक्ष्य परस्पर विरोधी नहीं होता। प्रसिद्ध संत रज्जबदास ने कहा था सब सॉच मिलै सो सॉच है, ना मिलै तो झूठ। सम्पूर्ण सत्य अविरोधी होता है। जहाँ भी विरोध दिखे, वहाँ सोचने की जरूरत होगी। हो सकता है कि दो भिन्न-भिन्न जनसमुदाय दो असत्य बातों को ही बड़ा सत्य मान बैठें हों। हो सकता है कि दोनों में एक सही हो और दूसरा गलत। साथ ही यह भी हो सकता है कि दोनों सही रास्ते पर हो पर उनके दृष्टिकोण गलत हों। यदि हमें अपनी गलती मालूम हो तो उसे निर्मम भाव से छोड़ देना होगा। महाभारत ने बहुत पहले घोषणा की थी कि जो धर्म दूसरे धर्म को बाधित करता है, वह धर्म

नहीं है। सच्चा धर्म अविरोधी होता है।

धर्मों यो बाधते धर्म न स धर्मो कुधर्म तत्

अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मो मुनिसत्तम

मैं जब ''भारतीय'' विशेषण जोड़कर संस्कृति शब्द का प्रयोग करता हूँ, तो मैं भारतवर्ष द्वारा अधिगत और साक्षात्कृत अविरोधी धर्म की ही बात कहता हूँ। अपनी विशेष भौगोलिक परिस्थिति में और विशेष ऐतिहासिक परम्परा के भीतर से मनुष्य के सर्वोत्तम को प्रकाशित करने के लिए इस देश के लोगों ने भी कुछ प्रयत्न किए हैं। जितने अंश में वह प्रयत्न संसार के अन्य मनुष्यों के

प्रयत्नों का अविरोधी है, उतने अंश में वह उनका पूरक भी है। भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न जातियों के अनुभूत और साक्षात्कृत अन्य विरोधी धर्मों की भाँति वह मनुष्य की जययात्रा में सहायक है। वह मनुष्य के सर्वोत्तम की जितने अंश में प्रकाशित और अग्रसर कर सका है। उतने ही अंश में वह सार्थक और महान है। वही भारतीय संस्कृति है, उसको प्रकट करना, उसकी व्याख्या करना या उसके प्रति जिज्ञासा भाव उचित है। यह प्रयास अपनी बड़ाई का प्रमाण पत्र संग्रह करने के लिए नहीं है, बल्कि मनुष्य की जययात्रा में सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से प्रोचित है। इसी महान उद्देश्य के लिए उसका अध्ययन, मनन और प्रकाशन होना चाहिए।

मनुष्य की जययात्रा! क्या मनुष्य ने किसी अज्ञात शत्रु को परास्त करने के लिए अपना दुर्द्धर रथ जोता है ? मनुष्य की जययात्रा! क्या जानबूझकर लोकचित को व्यामोहित करने के लिए वह पहले ही जैसा वाक्य बनाया गया है? मनुष्य की जययात्रा का क्या अर्थ हो सकता है? परन्तु मैं पाठकों को किसी प्रकार के शब्दजाल में उलझाने को संकल्प ले कर नहीं आया हूँ। मुझे यह वाक्य सचमुच बड़ा बल देता है। न जाने किस अनादि काल के एक अज्ञात मुहूर्त में यह पृथ्वी नामक ग्रहपिंड सूर्यमंडल से टूटकर उसके चारों ओर चक्कर काटने लगा था। मुझे उस समय का चित्र कल्पना के नेत्रों से देखने में बड़ा आनन्द आता है। उस सद्यस्तुटित धरित्री पिंड में ज्वलंत गैस भरे हुए थे। कोई नहीं जानता कि इन असंख्य अग्नि गर्भ कणों में से किसमें या किनमें जीवतत्व का अंकुर वर्तमान था। शायद वह सर्वत्र परिव्याप्त था। इसके बाद लाखों वर्ष तक धरती ठंडी होती रही, लाखों वर्ष तक उस पर तरल तप्त धातुओं की वर्षा होती रही, लाखों वर्ष तक उसके भीतर और बाहर प्रलयकांड मचा रहा, पृथ्वी अन्यान्य ग्रहों के साथ सूर्य के चारों ओर उसी प्रकार नाचती रही, जिस प्रकार खिलाड़ी के इशारे पर सरकस के घोड़े नाचते रहते हैं। जीवतत्व स्थिर अविश्रुब्ध भाव से उचित अवसर की प्रतीक्षा में बैठा रहा। अवसर आने पर उसने समस्त जड़ शक्ति के विरुद्ध विद्रोह करके सिर उठाया नगण्य तृणांकुर के रूप में ! तब से आज तक सम्पूर्ण जड़ शक्ति अपने आकर्षण का समूचा वेग लाकर भी उसे नीचे की ओर नहीं खींच सकी। सृष्टि के इतिहास में यह एकदम अघटित घटना थी। अब तक महाकर्ष (ग्रेविटेशन पावर) के विराट वेग को रोकने में कोई समर्थ नहीं हो सकता था। जीवतत्व प्रथम बार अपनी उर्ध्वगामिनी वृत्ति की अदना ताकत के बल पर इस महाकर्ष को अस्वीकार कर सका। तब से वह निरन्तर अग्रसर होता गया। मनुष्य उसी की अन्तिम परिणिति है। वह एक कोश से अनेक कोशों के जटिल संघटन में कर्मेन्द्रियों से ज्ञानेन्द्रियों की और ज्ञानेन्द्रियों से मन और बुद्धि की तरफ विकसित होता हुआ मानवात्मा के रूप में प्रकट हुआ। पंडितों ने देखा है कि मनुष्य तक आते-आते प्रकृति ने अपने कारखाने में असंख्य प्रयोग किये हैं। पुराने जंतुओं की विशाल उठरियाँ आज भी यत्रतत्र मिल जाती हैं और उन असंख्य प्रयोगों की गवाही दे जाती है। प्रकृति अपने प्रयोग में कृपण कभी नहीं रही हैं। उसने बरबादी की कभी परवाह नहीं की। दस वृक्षों के लिए वह दस लाख बीज बनाने में कभी कोताही नहीं करती। यह सब क्या व्यर्थ की अन्धता है, सुस्पष्ट योजना का अभाव है या हिसाब न जानने का दुष्परिणाम है? कौन बताए कि किस महानतम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रकृति ने इतनी बरबादी सही है? हम केवल इतना ही जानते है कि जब जीवतत्व समस्त विध्नबाधाओं को अतिक्रमण करके मनुष्य रूप

में अभिव्यक्त हुआ, तब इतिहास ही बदल गया। जो कुछ जैसा होना है, वह होकर ही रहेगा यही प्रकृति का अचल विधान है। कार्य कारण बनता है और नये कार्य को जन्म देता है। कार्यकारणों की इस नीरध्र ठोस परम्परा में इच्छा का कोई स्थान नहीं था। जो जैसा होने को है, वह होकर ही रहेगा। इसी समय मनुष्य आया। उसने इस साधारण नियम को अस्वीकार किया। उसने अपनी इच्छा के लिए न जाने कहाँ से एक फाँक निकाला। जो जैसा है, वैसा ही मान लेने की विवशता को उसने नहीं माना! जैसा होना चाहिए, वही बात है। इस जगह से सृष्टि का दूसरा अध्याय शुरू हुआ। एक बार कल्पना कीजिए, तरलतप्त धातुओं के प्रचण्ड समुद्र की, निरन्तर झरने वाले अग्निमेघों की विपुल जड़संघात की, और फिर कल्पना कीजिए क्षुद्राकार मनुष्य की! विराट ब्रहांड निकाय, कोटि नक्षत्रों का अग्निमय आवर्त-नृत्य, अनन्त शून्य में निरन्तर उद्‌भूयमान और विनाशमान नीहारिका पुञ्ज विस्मयकारी है, पर उनसे अधिक विस्मयकारी है मनुष्य, जो नगण्य स्थानकाल में रहकर इनकी नापजोख करने निकल पड़ा! क्या मनुष्य, इस सृष्टि की अंतिम परिणिती है? क्या विधाता ने केशवदास के बीरबल की भाँति इस कृति बीज की रचना करके हाथ झाड़ लिया है- ''कै करतार बली बलबीर दिये करतार दुहूँ करतारी''? परन्तु क्या यह मनुष्य की अमोघ जययात्रा नहीं है ? क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि समस्त गलतियों के बावजूद मनुष्य मनुष्यता की उच्चतर अभिव्यक्तियों की ओर बढ़ रहा है?

यह जो स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होना है, जो कुछ जैसा होने वाला है, उसको वैसा ही न मानकर जैसा होना चाहिए, उसकी ओर जाने का प्रयत्न है, यही मनुष्य की मनुष्यता है! उनके बातों में मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं है। मनुष्य पशु की अवस्था से ही अग्रसर होकर इस अवस्था में आया है। इसलिए वह स्थूल को छोड़कर रह नहीं सकता। यही कारण है कि मनुष्य को दो प्रकार के कर्त्तव्य निभाने पड़ते है, एक स्थूल की क्षुधा को निवृत्त करना और दूसरा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तत्त्व की ओर बढ़ाने वाली अपनी ऊर्ध्गामिनी वृत्ति को संतुष्ट करना। आहार, निद्रा आदि के साधना भी मनुष्य को जुटाने पड़ते हैं। यद्धपि मनुष्य-बुद्धि ने इनमें भी कमाल का उत्कर्ष दिखाया है, पर प्रयोजन, प्रयोजन ही है। प्रयोजन के जो अतीत है, जहाँ मनुष्य की आनंदिनी वृत्ति ही चरितार्थ होती है, वहाँ मनुष्य की ऊर्ध्वगामिनी वृत्ति को संतोष होता है। ज्यों मनुष्य संघवद्ध होकर रहने का अभ्यस्त होता गया, त्यों त्यों उसे समाजिक संघटन के लिए नाना प्रकार के नियम कानून बनाने पड़े। इस संघटन को गतिशील बनाने के लिए उसने दण्ड पुरस्कार की व्यवस्था भी की, इन बातों को एक शब्द में सभ्यता कहते हैं। आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक संघटन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य बोध को तीव्रतर करने की योजना; ये सभ्यता के चार स्तंभ हैं। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती है। सभ्यता के चार स्तंभ है। सभ्यता मनुष्य के बाह्य प्रयोजनों को सहजलभ्य करने का विधान है और संस्कृति प्रयोजनातीत आतर आनंद की अभिव्यक्ति। परन्तु शायद फिर मैं पहेलियों की बोली बोलने लगा हूँ। आप जानना चाहेंगे कि बाह्य प्रयोजन और आंतर अभिव्यक्ति क्या बला है? किसको तुम बाह्य कहते हो और किसको आंतर, तुम्हारे कथन में प्रमाण क्या है?

यह जो हमारे बाह्यकरण है-कर्मोन्द्रिय और ज्ञानेन्दिय है हमारे अत्यन्त स्थूल प्रयोजनों के निवर्तक है। मन इनसे सूक्ष्म है, बुद्धि और भी सूक्ष्म है। मन में हम हजार गज की लम्बाई की भी एकाएक

धारण नहीं कर सकते। पर बुद्धि द्वारा ज्योतिषी कोटि कोटि प्रकाशवर्षों में फैले हुए ग्रहनक्षत्रों की नापजोख किया करते हैं। परन्तु बुद्धि भी बड़ी चीज नहीं है। बुद्धि से भी बढ़कर कोई वस्तु है। वही अंतरतम है। गीता में कहा है।

इन्द्रयाणि पराण्याहुरिंदियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धियों बुद्रेः परतस्तु सः।।

जो वस्तु केवल इंद्रियों को संतुष्ट कर सके, वह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। जो वस्तु मन को संतुष्ट कर सके, अर्थात् हमारे भावावेगों को संतोष दे सके, वह पहली से सूक्ष्म होने पर भी बहुत बड़ी नहीं है। जो बात बुद्धि को संतोष दे सके, वह जरूर बड़ी है, पर वह भी बाह्य है। बुद्धि से भी परे कुछ है। वही वास्तव है, उसका संतोष ही काम्य है! परन्तु वह क्या है? मैं भारतीय मनीषा के इस संतव्य तक आपको ले आकर यह आशा नहीं कर रहा हूँ ; कि आप शास्त्र-वाक्य पर विश्वास कर लें। मैं इसके निकट आपको ले आकर छोड़ देता हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ कि यहाँ तक आकर आप इसकी गहराई में बैठने का प्रयत्न अवश्य करेंगे। जब तक इसकी गहराई में पैठने का प्रयत्न नहीं किया जाता, तब तक मनुष्य के बड़े बड़े प्रयत्नों का रहस्य समझ में नहीं आयेगा।

तैत्तिरीय उपनिषद् की भृगुवल्ली में वरुण के पुत्र भृगु की मनोरंजक कथा दी हुई है। भृगु ने जाकर वरुण से कहा था कि। हे भगवन मैं ब्रह्म को जानना चाहता हूँ। पिता ने तप करने की आज्ञा दी। कठिन तपस्या के बाद पुत्र ने समझा अन्न ही ब्रह्म है। पिता ने फिर तप करने को कहा। इस बार पुत्र कुछ और गहराई में गया। उसने प्राण को ही ब्रह्म समझा। पिता को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने पुत्र को पुनः तप करने के लिए उत्साहित किया। पुत्र ने फिर तप किया और समझा कि मन ही ब्रह्म है। पिता फिर भी असंतुष्ट ही रहे। फिर तप करने के बाद पुत्र ने अनुभव किया विज्ञान ही ब्रह्म है। पर पिता को अब भी संतोष नहीं हुआ। पुनर्वार कठिन तप के बाद पुत्र ने समझा आनन्द ही ब्रह्म है। यही चरम सत्य था। इस प्रकार अन्न (भौतिक पदार्थ) प्राण मनविज्ञान (बुद्धि) आनंद (अध्यात्म तत्व) ये ही ज्ञान के पाँच स्तर है। ये उत्तरोत्तर सूक्ष्म है। इन्हीं पाँचों को आश्रय करके संसार के भिन्न-भिन्न दार्शनिक मत बन जाते हैं। तर्काश्रित मत और विश्वास समार्पित मत। संदेह को उद्रिक्त करने वाला तर्काश्रित मत फिलासफी का प्रतिपाद्य मत बन गया है और विश्वास को आश्रय करके श्रद्धा को उदिक्त करनेवाला मत धर्मविज्ञान का। भारतवर्ष का इतिहास अन्य देशों से कुछ विचित्र रहा है। सभ्यता के उपाकाल से लेकर आधुनिक काल के आरम्भ तक हमारे देश में नाना मानवसमूहों की धारा बराबर आती रही है। इसमें सभ्य, अर्धसभ्य और बर्बर सभी श्रेणी के मनुष्य रहे हैं। भारतीय मनीषी शुरु से ही मनुष्य के बहुविध विश्वासों और मतों को जानने का अवसर पा सके है। इसीलिए यहाँ धर्मविज्ञान और तत्व जिज्ञासा कभी परस्पर विरोधी मत नहीं माने गये। भारतीय ऋषि ने दोनों का उचित सामंजस्य किया है। शायद इस विषय में भारतवर्ष सारे संसार को कुछ दे सकता है। भारतवर्ष के दार्शनिक साहित्य के आलोचकों को आश्चर्य हुआ कि इस देश में उस चीज का कभी विकास हो ही नहीं पाया जिसे फिलासफी कहते हैं; भारत वर्ष के दर्शन धर्म पर आधारित बताए गये हैं। दर्शन शब्द का अर्थ ही देखना है। इसका अंतर्निहित अर्थ यह है

कि दर्शन कुछ सिद्ध महात्माओं के देखे हुए (साक्षात्कृत) सत्यों का प्रतिपादन करते है। जैसा कि हमने अभी लक्ष्य किया है, यह देखना तब वास्तविक होगा जब वह केवल इंद्रिय द्वारा, प्राण द्वारा, मन द्वारा यहाँ तक कि बुद्धि द्वारा भी दृश्य स्थूल तथ्यों को पीछे छोड़कर उस वस्तु के द्वारा देखा गया हो, जो आनंदरूप है, जो सबके परे और सबसे सूक्ष्म है। यही स्वयंवेद्य ज्ञान है परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है, वह सत्य ही है। शरीर और मन की शुद्धि आवश्यक है। जब तक मनुष्य का बाहर और भीतर शुद्ध, निर्मल और पवित्र नहीं होते, तब वह गलत वस्तु को सत्य समझ सकता है। चंचल मन से कोई मामूली समस्या भी ठीक ठीक समाहित नहीं होती। यह जो बाह्य और अंतःकरणों की शुद्धि है, यही भारतीय दर्शनों की विशेषता है। जैसे तैसे रहकर, जैसा तैसा सोचकर बड़े सत्य को अनुभव नहीं किया जा सकता। चंचल चित्त केवल विकृत चिन्ता में ही लगा रहता है। भारतीय मनीषियों ने इस चंचल चित्त को वश में करने के उपाय बताए हैं। इसी उपाय का नाम योग है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि यद्यपि मन बड़ा चंचल है और उसे वश में करना कठिन है, तथापि अभ्यास और वैराग्य से उसे वश में किया जा सकता है। अभ्यास और वैराग्य के लिए भारतीय साहित्य में शताधिक ग्रंथ विद्यमान है। संभवतः सारे सार में बुद्धिजीवी इस विषय में यहाँ से कुछ सीख सकते हैं। केवल बौद्धिक विश्लेषण द्वारा सत्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। सर्वत्र अभ्यास और वैराग्य आवश्यक है।

हमने अभी जिन पाँच तत्वों को लक्ष्य किया, उनमें सबसे स्थूल हैं यह शरीर, फिर प्राण और फिर मन। शरीर का प्रतीक बिन्दु है। भारतीय मनीषियों ने अनुभव किया है कि इनमें से किसी एक को संयत करने का अभ्यास किया जाय तो बाकी संयत हो जाते हैं। भारतवर्ष के नाना आध्यात्मिक पंथ इन तीनों को संयत करने के ऊपर जोर देने के कारण अलग-अलग हो गये हैं। संयमन की विधि भी सर्वत्र एक नहीं है। नाना बौद्ध और शाक्त साधनाओं में बिन्दु को वश में करने की विधियाँ बताई गई हैं, हठयोग प्राण को वश में करने के पक्ष में है, राजयोग मन को वश में करने की विधि बताता है। ये सब अभ्यास द्वारा सिद्ध होते हैं। ऊपर-ऊपर से देखने वाले आलोचक भारतीय साधन मार्गों में इतना अधिक भेद देखते हैं कि उन्हें समझ में नहीं आता कि ये विभिन्न पंथ किस प्रकार अपने को एक ही मूल उम से उद्भूत बताते है गहराई में जाने वाले के लिये ये विरोध नगण्य हैं। नाना भाँति अभ्यास के द्वारा साधक बिन्दु प्राण और मन को स्थिर करता है। तब जाकर अन्तःकरण निर्मल स्फटिक मणि के समान होता है। परन्तु यहाँ भी भ्रांति का अवकाश रहता है। इसलिए भारतीय मनीषियों ने केवल अभ्यास को ही एकमात्र साधन नहीं माना। अभ्यास के साथ वैराग्य होना चाहिए। राग द्वेष वा जो इंद्रिय चांचल्य होता है, उसको रोकना, राग और विराग के विषयों को अलग-अलग समझ सकना, मन द्वारा विषयों की चिन्ता और अंत में मानसिक उत्सुकता को दबा देना ये सब वैराग्य के भेद है, परन्तु असली वैराग्य तो तब होता है जब अन्तरात्मा समस्त इन्द्रियों से और मनबुद्धि आदि सब तत्वों से अपने को पृथक् समझ लेता है। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य से चित्त स्थिर होता है और बुद्धि निर्मल होती है केवल उसी समय परम सत्य का साक्षात्कार होता है।

मेरा अनुमान है कि विचार का यह प्रकृष्ट पंथ है, परन्तु यह मेरा दावा नहीं है कि मैं इस बात को ठीक-ठीक समझ सकता हूँ। वस्तुतः यह साधना का विषय है, परन्तु यह समझाना कठिन नहीं कि किसी बात की सच्चाई तक पहुँचने के लिए एक प्रकार के बौद्धिक वैराग्य की आवश्यकता है। संसार की समस्त जटिल समस्याएँ नित्यप्रति और जटिलतर इसलिए होती जाती है कि इन पर विचार करने वालों में मानसिक संयम और बौद्धिक वैराग्य का अभाव है। लोग अपने-अपने विशेष स्वार्थों और विचार-पद्धतियों के भीतर से दूसरों को देखने का प्रयास करते है और समस्याएँ और भी जटिलतर हो जाती है। बौद्धिक वैराग्य ही मनुष्य को संस्कृत बनाता है।

भारतवर्ष का साहित्य बड़ा विशाल और विपुल है। उसने ज्ञान और साधना के क्षेत्र में नाना भाव से विचार किया है। मैं सबकी चर्चा करने योग्य अधिकारी भी नहीं हूँ और यहाँ इतना समय भी नहीं है; परन्तु इतना स्मरण कर लेना उचित है कि यह जो आध्यात्मिक परमसत्य की उपलब्धि है और जिसके लिए शरीरिक, मानसिक और बौद्धिक समय और वैराग्य की बात बताई गई है सिर्फ यही एकमात्र काम नहीं बताया गया। यद्यपि यह परमोत्तम लक्ष्य है, पर इस लक्ष्य की पूर्ति के पहले प्रत्येक व्यक्ति को कुछ ऋणों से छुटकारा दिया गया है। अधिकांश लोग इन ऋणों को चुकाए बिना किसी भी बड़ी साधना के अधिकारी नहीं हो सकते।

भारतीय विश्वास के अनुसार मनुष्य तीन प्रकार के ऋणों को लेकर पैदा होता है। ये तीन ऋण हैं देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण। पैदा होते ही मनुष्य अपने सम्पूर्ण शरीर और इंद्रियों को पा जाता है। ये इंद्रियों उसे न मिलतीं तो वह न तो संसार का कुछ आनन्द ही उपभोग कर सकता, न कुछ नया दे ही सकता। निश्चय ही वह माता-पिता के निकट इसके लिए ऋणि है। परन्तु वह अनादिकालीन धारा का परिणाम पितृ-पितामहों ने उसे जो शरीर दिया है उसका क्या कोई प्रतिदान दे सकता है। भारतीय मनीषियों ने इसका एकमात्र उपाय यह बताया है कि मनुष्य इसे ऋण के रूप में स्वीकार कर ले और पितृ पितामहों की इस धारा को आगे बढ़ा दे। धरा रूद्ध न होने पावे। कौन जानता है भविष्य में उसी धारा में कौन कृती बालक पैदा होकर संसार को नई रोशनी दे? इसलिए शास्त्रकारों ने पितृऋण से मुक्ति पाने का उपाय संतान उत्पन्न करना और उन्हें शिक्षित बनाकर समाज के हाथों सौंप जाने को बताया है। फिर मनुष्य पैदा होते ही अनेक विज्ञानों और विज्ञानियों की आविष्कृत ज्ञानराशि को सहज ही पा जाता है। हर व्यक्ति को नये सिरे से अगर अपना-अपना प्रयोग और आविष्कार चलाना पड़ता तो मनुष्य की यह दुनिया कैसी बन गई होती, यह केवल सोचने की बात है। सो मनुष्य इस प्रकार अतीत के ऋतियों का ऋण लिये हुए पैदा होता है। इसे चुकाने का उपाय ज्ञान की धारा की रक्षा और उसे अग्रसर कर देना है। विद्या पढ़ना और ज्ञानधारा को अग्रसर करना कोई कृतित्व नहीं, सिर्फ कर्जा चुकाने का कर्तव्यपालन मात्र है। फिर अन्न को पैदा करने वाली पृथ्वी, जल बरसाने वाले मेघ, प्रकाश देने वाला सूर्य आदि प्राकृतिक शक्तियों जिन्हें भारतीय मनीषी देवता कहता है हमें अनायास मिल गई हैं। भारतीय मनीषी ने इनके ऋण से मुक्ति पाने का उपाय बाँटकर भोग करना बताया है। जो तुम्हारे पास है, सबको बाँटकर ग्रहण करो। सो ये तीन ऋण मनुष्य के जन्म से ही लदे आते हैं। इन तीन ऋणों को चुकाए बिना मोक्ष पाने का प्रयत्न पाप है। भारतवर्ष में प्रत्येक व्यक्ति से यह कम से कम आशा की गई है कि

वह समाज को स्वस्थ और शिक्षित सन्तान दे, प्रचीन ज्ञान परम्परा की रक्षा करे और उसे आगे बढ़ाने का प्रयत्न करे और प्राकृतिक शक्तियों से प्राप्त सम्पदा को निजी समझकर दबा न रखें। ये ऋण है। मनुस्मृति के छठवें अध्याय में कहा गया है कि जो इनको चुकाए बिना ही मोक्ष की कामना करता है, वह अघःपतित होता है : ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेश्येत.।

अनपाकृत्य मोक्षान्तु सेवमानो ब्रजत्यघः

जब तक ये ऋण चुका नहीं दिये जाते, तब तक मनुष्य को बड़ी बात सोचने का अधिकार नहीं है। भारतवर्ष ने एशिया और यूरोप के देशों को अपनी धर्म-साधना की उत्तम वस्तुएँ दान दी है। उसने अहिंसा और मैत्री का सन्देश दिया है, क्षुद्र दुनियावी स्वार्थों की उपेक्षा करके विशाल आध्यात्मिक अनुभूतियों का उपदेश दिया है और उससे जिन बातों को ग्रहण किया है, वे भी उसी प्रकार महान और दीर्घस्थायी रही है। उच्चतर क्षेत्र के आदान प्रदान के ठोस चिन्ह अब भी इस भूमि के नीचे से निकलते रहते है और विदेशों में मिल जाया करते हैं। हमारा धर्म, विज्ञान, हमारी मूर्ति और मंन्दिर शिल्प, हमारा दर्शन-शास्त्र, हमारे काव्य और नाटक, हमारी चिकित्सा और ज्योतिष संसार में गये हैं ; सम्मानित और स्वीकृत हुए है और संसार की उच्च चिंतनशील जातियों से थोड़ा बहुत प्रभावित भी हुए हैं। मैं आज आपको उस दिव्य लोक की सैर नहीं करा सका, जहाँ भारतीय आचार्य पर्वतों और रेगिस्तानों को लाँघकर अहिंसा और मैत्री का सन्देश देते हैं, जहाँ हमारे शिल्पी गांधार और यवन कलाकारों के साथ मिलकर पत्थर में जान डाल रहे हैं, जहाँ मलय और सवद्वीप में वहाँ के निवासियों से मिलकर शिल्प और कला में नया प्राणसंचार कर रहे हैं। मैं उस परम मोहक लोक में आपको न ले जाकर शास्त्रीय नीरस विचारों में उलझाए रहा, परन्तु इसके लिए मुझे क्षमा माँगने की जरूरत नहीं है, क्योंकि मेरा विश्वास है कि भारतीय मनीषियों ने अपने देशवासियों में जीवन के आवश्यक कर्तव्य और वैराग्य की महिमा और स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की ओर झुकने का प्रेम पैदा किया और उसका ही परिणाम है कि भारतवर्ष दीर्घकाल तक पशुसुलभ क्षुद्र स्वार्थों का गुलाम नहीं बन सका। आज हम सांस्कृतिक दृष्टि से जो बहुत नीचे गिर गये हैं, उसका प्रधान कारण यही है कि हम इस महान आर्दा को भूल गये हैं। मेरा विश्वास है कि इन आदर्शों को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर ग्रहण करने से हम तो ऊपर उठेंगे ही, सारे संसार को भी उसमें कुछ न कुछ ऐसा अवश्य मिलेगा जिससे उसे वर्तमान प्रलयंकर अवस्था से उभरने का मौका मिले। भारतवर्ष ने सामान्य मानवीय संस्कृति को पूर्ण और व्यापक बनाने की जो महती साधना की है, उसके प्रत्येक पहलू का अध्ययन और प्रकाशन हमारा अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्तव्य होना चाहिए।

नव निबंध से साभार

चिंतनधारा

जब कोई अपना अगला कदम पहचानने लगता है, तो बड़े परिवर्तन का आरंभ हो जाता है। - विलियम ड्रेटन

मन की निर्मलता ही आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण करती है। - स्वामी विवेकानंद

शुभ कार्य स्वयं को मानसिक शक्ति देते हैं और दूसरे को भी अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। - प्लेटो

किसी सफल व्यक्ति तथा दूसरों के बीच में अंतर ताकत का नहीं, ज्ञान का नहीं, बल्कि इच्छाशक्ति का होता है। - विंस लोमबार्डी

अपने मित्र को उसके दोषों को बताना मित्रता की सबसे कठोर परीक्षा होती है।

- हैनरी वार्ड बीचर

हज़ार योद्धाओं पर विजय पाना आसान है, लेकिन जो अपने ऊपर विजय पाता है वही सच्चा विजयी है। - गौतम बुद्ध

असफलता का मौसम, सफलता के बीज बोने के लिए सर्वश्रेष्ठ समय होता है।

- परमहंस योगानंद

धन बर्बाद करने पर आप केवल निर्धन होते है, लेकिन समय बर्बाद किया तो जीवन का एक हिस्सा गंवा देते हैं। - मिशेल लेबोएफ

व्यक्ति जो अच्छी किताबें नहीं पढ़ता, उससे कतई बेहतर नहीं है जो किताबें पढ़ ही नहीं सकता। - मार्क ट्वेन

सच्चे मित्र मुश्किल से मिलते हैं, कठिनता से छूटते हैं और भुलाए नहीं भूलते हैं। - जी रेण्डॉल्फ

हम शिकायत कर सकते हैं कि गुलाब के पौधे में कांटे हैं या खुशी व्यक्त कर सकते हैं कि कांटों के पौधे में गुलाब हैं। - अब्राहम लिंकन

संभव की सीमा जानने का केवल एक ही तरीका है। असंभव से भी आगे निकल जाना...।

- स्वामी विवेकानंद

कभी कभी छोटी लड़ाई हारने पर ऐसा रास्ता मिल जाता है जिससे युद्ध जीता जा सकता है।

- डोनॉल्ड ट्रंप

अगर आपकी कोई आलोचना नहीं कर रहा, इसका मतलब है कि आप अभी सफलता से काफी दूर है। - मैल्कम

कार्यालय में स्वच्छता अभियान

दामोदरा एम.एम.
सहायक प्रशासनिक अधिकारी
वेरावल अनुसंधान केंद्र,
भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं, वेरावल

चलों लें यह प्रण, हो ऑफिस स्वच्छ व सुंदर सी
है यह हमारी कार्यशाला, बन जाए एक मंदिर सी।
जगह पवित्र है यह इतनी, रोजी रोटी की कमाई की
फर्ज इतना तो बनता है, रखें इसे सजी सजाई सी।।
टेबल, कुर्सी, पंखा, कमरा, हो ऊपर चलता ए.सी. भी
जाँचते रहना समय समय पर, नजरें मीठे नयनों की।
ऑफिस आपका और यह सभी, आपके कार्यकाल के साथी भी
समय निकाल करें साफ इसे, मिलेंगी दुआ उनसे भी।।
करें सफ़ाई हम आगे आके, रखें न कोई शर्मिंदगी
तभी तो हमसे जूनियर, आएंगे बात करने सफाई की।
मिलेगा साथ सबका आपको, होगी छबि स्वच्छ ऑफिस की
जगह ना गंदी होगी आपकी, ना कर पाएगा कोई इसे गंदी।।
आतेजाते मुलाकाती को, महसूस होगी एक खुशी सी
दूसरों को वह बतलाएगा, छाप आपकी अच्छी सी।
कहेगा देखी मैंने, एक सुंदर ऑफिस ऐसी भी
सुंदर तनमन, हम रख सकते हैं।।
शक्ल क्यों ना हो सुंदर अपनी ऑफिस की
करें सार्थक सब मिल बैठ के, सीख बापू की अनमोल सी।
दे योगदान हिस्से अपने का, हो जायें खुश माँ भारती
सपना होगा साकार अपना, सफल कामना इस अभियान की।।

बापू

नवनीत के.
S/o पी. कृष्ण कुमार
सहायक प्रशासनिक अधिकारी
भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं, कोचिन

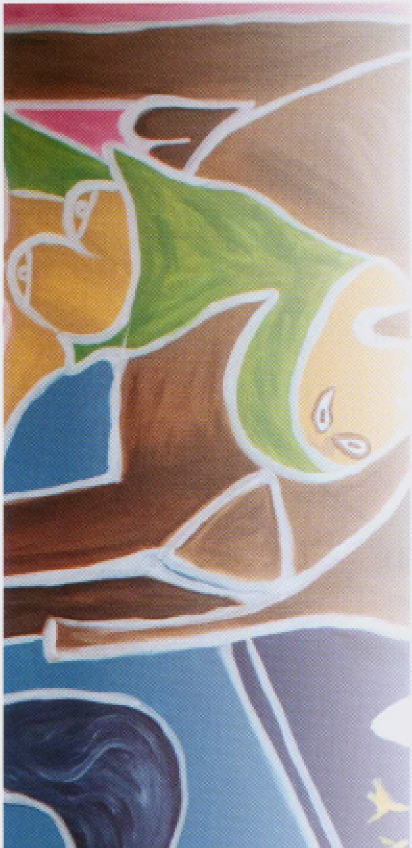

हमारे भारत के प्यारे बापू
भारत माँ के वीर सुपूत बापू
सरल जीवन उनका नारा
उच्च विचार की करते कामना

दीन दुखियों के सच्चे दोस्त
अस्पृश्यता का करते विरोध
देशी चीजों का करते प्रचार
जन मास में जगाते देशी विचार

स्वतंत्रता संग्राम के जोश थे बापू
संग्रामियों के प्रेरणा थे बापू
हिंदी के थे सच्चे प्रेमी
मानते उसे अमृत वाणी

बीसवीं सदी के महान संत थे बापू
हम प्यार से पुकारते हैं उन्हें
महात्मा जी

मंज़िल ज़रूर मिलेगी

हर्षवर्धन

S/o आर. आनंदन

प्रधान वैज्ञानिक

जैव रसायन एवं पोषण प्रभाग

भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं, कोचिन

थक कर बैठना कभी ना,
जब तक अंदर तेरे जान है .....
रख हौसला, आगे बढ़ता जा
देख मंज़िल कितनी आसान है।।
हासिल कर ले उस मंज़िल को
जो तुझसे कोसों दूर है ....
तुझे मेहनत करना ज़रूर है
तुझे बनना कुछ ज़रूर है ...।।

बाँध अरमान जब चल दिया,
तो डर है, अब किस बात की ...
मंज़िल पाने वाले अकेले चलते
इंतज़ार करते नही साथ की।।
मजा लेता जा ज़िंदगी का तू
देख मजा भरा भरपूर है....
तुझे मेहनत करना ज़रूर है
तुझे बनना कुछ ज़रूर है ..।।

फिसलते हैं सबके पैर बारबार
अपनी मंज़िल को पाने में...
जो पीछे हटाते नहीं है पैरों को
शोहरत मिलता है उन्हे जमाने में।।
तुम भी पीछे ना पैर हटाना
तुझे होना अभी मशहूर है।
तुझे मेहनत करना ज़रूर है
तुझे बनना कुछ ज़रूर है।

पीछे मुड़कर कभी न देखना
तुझे बनाना नया इतिहास है....
बस यही सोच कर आगे बढ़ना
कि मंजिल आने वाली तेरे पास है।
लगा दे अपनी पूरी ताकत
जितना तुझमे जोर है....
तुझे मेहनत करना ज़रूर है
तुझे बनना कुछ ज़रूर है।

देवीमाँ

तेलुगु मूल : राऊला पुल्लाचारी
हिन्दी अनुवाद : **डॉ. पी. शंकर**
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
राजभाषा अनुभाग
भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं, कोचिन

सुबह के ग्यारह भी नहीं बजे ये धूप सर के बीच में आग लगाने पर जलने जैसी कड़क हो गयी। काशय्या बाए कंधे पर कुल्हाड़ी, दाहिने हाथ में छेनी, पोंटे और हथौड़ा पकड़ कर पेड़ों की छाया में चल रहा है। पूरे चेहरे से निकल रहे पसीने को पोंछते हुए, मार्ग की पोचम्मा मंदिर पार करके गांव में आया। वहां पर गांव के सराय के पास में कुछ लोग बैठकर, नीम के पेड़ की छाया में ठहरकर गंभीर चर्चा कर रहे हैं। एक ओर महिलाएं, दूसरी ओर युवक सोच विचार कर रहे हैं। सराय की छाया के नीचे बड़ी लकड़ी से बंधे दो बैल, घास पर सोकर आंखें बंद करके घास चबा रहे हैं।

धूप में आया काशय्या कंधे पर रखी कुल्हाड़ी, हाथ में रखे औज़ार बैल गाड़ी पर रख दिया। आवाज़ होने से घास खा रहे बैल मज़बूरी से आंख खोलकर ऊपर देखे। उनकी नज़र के साथ ही वहां पर ठहरे सब की नज़र काशय्या पर पड़ी। देखो काशय्या भी आ गया कहकर कुछ लोग कहे।

क्या पटेलजी आप सब कुछ बात कर रहे है........कहते हुए उस ने बड़े पटेल, सरपंच आदिरेड्डी की ओर देखते हुए पूछा।

आ! यहां बैठना काशय्या......हमारे गांव में ग्रामदेवता लगाने के बारे में विचार-विमर्श कर रहे है। ऐसे ही देवीमां की मूर्ति भी स्थापित करने के बारे में सोच रहे है।

गांव में सब को अच्छा होगा, यह होने देना पटेल जी, काशय्या ने कहा।

फिर तो लकड़ी पर मूर्तियों को खोदना, पत्थर पर देवीमां को तराशना यह दोनों काम तुम्हें ही करना है। वह क्या कहेगा, ऐसा सोचकर आदिरेड्डी ने उसकी ओर देखा।

पटेल जी! इतनी बड़ी जिम्मेदारी मुझ पर रख रहे है, लकड़ी से ग्रामदेवता बना सकता हूँ, लेकिन देवीमाँ की मूर्ति पत्थर से तैयार करने के लिए मुझ में अब पहले जैसा धैर्य नहीं है! मेरी दृष्टि भी ठीक नहीं है। काशय्या क्यों ऐसा कह रहे हो! तुम्हें यह दोनों काम आते हैं, आसपास के गांवों को तुम्हीं ने यह सब बनाकर दिए है ना?

वह दस साल पुरानी बात है तब मैं फुर्तीला था। बनाकर दिया। उस समय मेरी पत्नी गोवींदम्मा मेरे साथ थी। लेकिन, अब उसके अचानक मर जाने से मुझ से न होने वाली चिंता अत्यधिक हो गई। तब से मेरी मूर्ति बनाने का काम रुक गया। अब कुछ छोटा सा बढ़ई का काम करके जी रहा हूँ।

काशय्या! गोवींदम्मा गई सोचते हुए जरूरी कामों को रोक देते क्या? अपनी कला को निखरना कहकर काशय्या के कंधे पर हाथ रखते हुए उस गांव का मोतावर किसान मुत्तालिंगम ने कहा।

नहीं भाई......देवीमाँ की पत्थर की मूर्ति गढ़ने के लिए सीमांत छेनी, एक छोटी सी हथौड़ी, पत्थर को छिरने के लिए औज़ार चाहिए। यह औज़ार सब अब मेरे पास नहीं है। इन्हें अब तैयार करना होगा..

भैय्या! कैसे भी हो आप ही इस गांव की देवीमाँ को तैयार करना, पेड़ के नीचे खड़ी महिलाएं काशय्या के नज़दीक आकर प्यार से कही।

काशय्या चुपचाप जाकर बड़ी बैल गाड़ी में जा बैठा। सभी लोग काशय्या के जवाब की प्रतीक्षा कर रहे थे।

गांव के सब बड़े लोग काशय्या को सामान खरीदने के लिए, यह मूर्तियां तैयार करने तक उसका घर चलने लायक पैसा देने का निर्णय किए।

तब भी काशय्या के मुँह नहीं खोलने पर आदिरेड्डी ने पूछा क्या कहते हो काशय्या?

मुहूर्त्त का समय डेढ़ महीने ही है। तब तक पूरा कर सकता हूँ क्या ? सोच रहा हूँ।

तुम्हारे काम के बारे में हमें पता नहीं हैं क्या? काशय्या तुम करना चाहे तो एक महीने में यह कर सकते हो तुम हां कर दो, यह कहकर गांव के सब लोग जबरदस्ती करने लगे।

ठीक है! ग्रामदेवता को बनाने के लिए लकड़ियां, देवीमाँ की मूर्ति के लिए चन्द्रशील पत्थर लाकर रखना, काशय्या कुछ सोचते हुए धीरे से कहा......

तुम्हारे कहे के अनुसार यह सब लाने के लिए हम तैयार हैं। अपने औज़ारों को तेज करना काशय्या.....कहकर गांव के वरिष्ठ व्यक्ति विदा लिए।

मूर्तियों का काम खत्म हुआ समझकर गांव के वरिष्ठ व्यक्ति मूर्ति प्रतिष्ठता से संबंधित अन्य विषयों पर विचार-विमर्श खत्म करके अपने अपने घर चले गए।

कंधे पर के छोटे शाल को एक बार झठककर अपने औज़ार पूरे अच्छी तरह पकड़ कर घर के रास्ते निकाल पढ़ा काशय्या।

काशय्या का घर चौरास्ते पर, बाप दादा के जमाने का खपरैल का घर है। घर के चारों ओर काफी जगह हैं। चारों ओर मिट्टी से बनी सीमा की दीवार, कहीं कहीं पर काशय्या के गरीब जीवन को दर्शा रही हैं।

उस दीवार से लगकर बढ़ई, गढ़ाई के काम करने के लिए एक शेड बना लिया। उस के बगल में काफी बड़ा आम का पेड़, दूसरी ओर नीम का पेड़ हैं। पेड़ होने के कारण घर के सामने पूरे दिन छाया फैली रहती है। काम करवाने आए लोग उस की छाया में बैठकर उससे काम करवाकर ले जाते हैं। घर के बाहर की किवाड़ को खोलने की आवाज आने पर सिलाई मशीन चला रही देवेन्द्र बाहर आकर देखी। और पूछी कि क्या....पापा, आज इतनी देरी हुई.....

सराय के पास सब बड़े लोगों के साथ बैठक करने के लिए वहां रुका था बेटी। इस कारण देरी हुई कहते हुए कहीं कहीं पर फटे बनियान को गले में से खींचकर लकड़ी पर डाला।

कैसी बैठक पापा! दिलचस्पी से पूछी..... देवेन्द्र।

हमारे गांववाले गांव में ग्रामदेवता की स्थापना करना चाहते है और देवीमाँ की मंदिर का निर्माण करना चाहते है।

ग्रामदेवता, उस पुरानी मंदिर के बगल में पीपल के पेड़ के नीचे है न पापा..... हां बेटी ! यह हमारा गांव बनते समय की गढ़ी ग्रामदेवता है। यह बारिश में भीगकर, धूप में सूखकर, पशुओं के उस पर चलने से टूट गई हैं। अब उसे शुद्ध करके नए सिरे से गढ़ने के बारे में सोच रहे हैं।

इस के लिए काफी विचार मंथन की क्या जरूरत है पापा। जो है उसे निकाल कर लकड़ी से मूर्ति गढ़कर रखने से हो जाएगा न पापा.....मासूमियत से देवेन्द्र ने कही, ग्रामदेवता कहने से कोई ऐसी वैसी बात नहीं बेटा! उस के लिए तीन दिनों से पहले पूरे गांव को घेर कर आना जाना बंद करेंगे। गांव के चारों ओर आधी रात को पूजा का पानी छिड़कने के बाद ग्रामदेवता को स्थापित करेंगे। काशय्या ने यह कहकर अपनी बेटी को विस्तृत जानकारी दिया।

ओ, इतनी विशेषता होती है क्या! हाथ पैर धो लो पापा! शाम हो गई, भूख लग रही होंगी।

कुछ खा लो पापा......कहते हुए भीतर गई। बेटी के साथ काशय्या भी भीतर चल पड़ा।

ठीक एक सप्ताह के बाद ग्रामवासी सब मिलकर काशय्या के पहले बताए जैसा ग्राम देवता को बनाने के लिए पेड़ की लकड़ियां, देवीमाँ की मूर्ति को गढ़ने के लिए चन्द्रशील पत्थर को लाकर उनके शेड में रखे। अच्छा दिन देखकर यह काम शुरू करना कहकर कुछ नगद भी हाथ में रखे।

कांप रहे हाथों से काशय्या पैसे लेकर आंखों से लगा कर काम शुरू करूँगा का वादा किया। काशय्या का मन खराब होने पर धीरे से जाकर शेड के खाट पर बैठ कर आंख बंद कर लिया। कई यादें उसे पीछा कर रही छाया में घूम रही थी।

वे जब कभी कोई नया काम शुरू करने पर पत्नी गोवींदम्मा नज़दीक रहती थी। वे अपने व्यवसाय

के काम में कुछ भी पैसा मिलने पर पहले पत्नी के हाथ में रखता था। गोवींदम्मा उन पैसों को अधिक सावधानी से खर्च किया करती थी। गोवींदम्मा भी धान बोने, फ़सल का काम, गांव में मज़दूरी से कमाई के पैसे लाकर एक एक छोटे पैसे का हिसाब किताब बताती थी।

दोनों की कमाई को एक छोटे से मिट्टी के बर्तन में रखकर घर के जरूरतों के लिए इस्तेमाल करती थी। गोवीन्दम्मा के समय में काशय्या को कमाई की जरूरत नहीं होती थी। बढ़ई, गढ़ाई का काम, अच्छा चलते समय देवेन्द्र पैदा हुई। देवेन्द्र की पढ़ाई-लिखाई गांव के खेती कार्यों के समय में भी बिना पैसो की कमी के चली। जब किसान इज्जत से धान अथवा दालें काफी मात्रा में देते थे।

समय बीतने पर केवल दस वर्षों में गांव के किसान हल के स्थान पर ट्रेक्टर, बैलों के सहारे पानी सींचने के बदले में विद्युत मोटरों से खेती के सभी कार्यों को बिना मानव सहायता के कर ले रहे हैं। क्रमानुसार अपने भरोसे का व्यवसाय खत्म हो गया। इस से देवेन्द्र की पढ़ाई रुक गई। कम से कम इस वर्ष उसे एक घर वाली बनाकर भेजने की काफी कोशिश की गोवींदम्मा।

काशय्या ने बढ़ई के साथ अधिक कौशलता से पत्थरों से मूर्तियों को गढ़ना शुरू किया। हनुमान जी की मूर्तियां, नवग्रह की मूर्तियां तराशकर आसपास के गांव वालों को दिया। यह काम भी बिना किसी परेशानी के कुछ समय तक चला। कुछ समय के बाद पत्थरों को तराशने का काम भी विद्युत मोटर की सहायता से ड्रिलिंग, फिनीशिंग से मूर्तियां तैयार होने लगी। इस प्रतिस्पर्धा में मेरी छेनी, हथौड़ी प्रतियोगिता में नहीं ठहरने के कारण हार गई। यह काम निरंतर नहीं होने से औज़ार बेकार हो गए।

उस समय बीस बरस की बेटी देवेन्द्र दिल में कांटे जैसी चुभ रही थी। दक्ष सभी काम बंद होने से काशय्या के हाथ काम करना बंद कर दिए। हाथ को मुँह में रखने का सहारा गोवींदम्मा की मेहनत ही आधार बनी।

उस की परेशानी देख नहीं सकने के कारण काशय्या, गोवींदम्मा से कहा, मैं भी मज़दूरी करने आऊँगा।

गोवींदम्मा, काशय्या के हाथ कस कर पकड़कर नहीं जी! मंदिर में स्थापित देवियों की मूर्तियां, खेती में फसल करने के लिए हल बनाए, हाथों से मज़दूरी का काम नहीं करना जी। जब तक मैं हूँ तब तक आप का व्यवसाय का काम ही करना जी! कहते हुए अधिक भरोसे दिलाती थी। ऐसा क्यों बोल रही गोवींदम्मा। जब मैं काम करता था उस समय मेरे काम में बड़ी बड़ी लकड़ियां काटने तुम आरा नहीं खींचती थी, मूर्तियां तराशने के समय बड़े-बड़े पत्थरो को धैर्य से तुम पकड़ी नहीं क्या। अब घर चलाने के लिए मुझे मज़दूरी को जाने देना गोवींदम्मा.... दुःख से कहता था काशय्या।

लेकिन गोवींदम्मा काशय्या से ठंडी छाया में बैठकर जो मिला वो व्यसायिक काम करने की प्रार्थना करती थी। काशय्या से गोवींदम्मा को पागल जैसा प्रेम एवं अनुराग था।

ऐसी गोवींदम्मा सप्ताह के भीतर बुखार से बिस्तर पर गिरकर मुझे, बेटी देवेन्द्र को छोड़कर चल बसी। समय के साथ व्यवसाय गया, साथी गई। फिर भी देवेन्द्र की शादी करने तक गोवींदम्मा के

यादों में जीने का संघर्ष कर रहा हूँ।

लेकिन अपने गांव वाले उसकी कौशलता को बिना भूले, अभिमान से यह कार्य सौंपने पर मूर्ति में जान डालकर, यह मूर्ति की हमेशा पूजा हो, ऐसा करना चाहते थे। गांव के लोगों द्वारा दिए पैसों को फिर एक बार आंखों को लगाकर देवेंद्र को बुलाया और कहा इन पैसों को तेरी मां गोवींदम्मा रखने वाली हंड़ी में रखना, यह कहकर बेटी को दिया।

दूसरे दिन सुबह चार बजे उठा काशय्या देवेन्द्र को भी नींद से उठाया। काशय्या ठंडे पानी से स्नान करके आने तक देवेंद्र शेड को अच्छी तरह साफ करके रंगोली बनायी। तब काशय्या उसे भी तैयार होकर आने को कहा।

लकड़ी से ग्रामदेवता को एक दो दिनों में तराश सकते समझकर काशय्या पहले देवीमाँ की मूर्ति तराशने का निर्णय लिया।

उस पत्थर के शिला पर बेटी से हल्दी, कुम कुम छिनकाकर, वे भी भक्ति भाव से देवीमाँ को वंदना करके नारियल फोड़ा।

दोपहर के एक बजे तक चन्द्रशीला पत्थर को जरूरी रीति में चारों ओर तराशकर, सफ़ेद चाक से चिह्न लगाकर मूर्ति को तराशने के अनुकूल बना लिया।

काशय्या प्रतिदिन बिना किसी चूक के श्रद्धा भाव से देवीमाँ की मूर्ति को तराशने लगा। देवेन्द्र अपने पापा द्वारा किए जा रहे कार्य को उत्साह से देखती थी। गांव के वरिष्ठ भी आकर मूर्तियां तैयार होना देखकर खुश होते थे। मूर्ति तराश रहे दिनों में काशय्या रातों में कम सोकर आधी रात होने पर भी बारीक छेनियों से आंख, नाक तराश कर सजा रहा था।

ऐसा करते हुए सुबह होने पर मूर्ति को कई दिशाओं से परीक्षण किया करता था। मन भर आने पर उसे बर्दाशत नहीं होता था। कुछ अनहोनी होने के डर से आंख नम हो जाती थी।

अपराध के डर से पहले वाली मूर्ति की जोड़ी के लिए एक और मूर्ति को पंद्रह दिनों के भीतर तराशा। पूर्ण हुए दोनों मूर्तियों को अंगामा शास्त्र के अनुसार प्रतिष्ठित होने तक पैरों को मोम लगाकर रखा। प्रतिष्ठापन के एक सप्ताह के पहले ही ग्रामदेवता को भी तराश कर रख दिया।

दो, तीन दिन पहले से ही गांव पूरा मूर्ति प्रतिष्ठा के हलचल में लग गया। नए बनाए मंदिर को विद्युतदीपों से अलंकार करके प्रतिष्ठा की जगह बड़े-बड़े डेरे डालकर रंगबिरंगी कागजों, भगवा झंडों, आम के पत्तों की लड़ियों को बांधकर सर्व सुंदर बनाया गया।

उस दिन महिला, पुरुष ग्राम के वरिष्ठ, बच्चे सब वाद्य यंत्रों के साथ मूर्तियों को ले जाने के लिए काशय्या के घर आए।

आदिरेड्डी, मुत्तालिंगम को काशय्या सादर आह्वान कर सब को शेड में ले गया। मूर्तियों पर ढ़के कपड़े को हठाकर सब को बताया।

पटेल जी दो मूर्तियों को तराश। इस में से आप को जो मूर्ति पसंद है उसे ले जाना जी! फिर भी क्यों पता नहीं, इस मूर्ति को प्रतिष्ठित करना कहकर दूसरी बार तराशे गए मूर्ति को बताया......

लेकिन, आश्चर्य से गांव की सब जनता पहले तराशी देवीमाँ की मूर्ति प्राप्ति पर ज़ोर दिए। लेकिन काशय्या सब लोग द्वारा पसंद किए मूर्ति पर से अपनी नज़र हठाए बिना किसी माँ से छोटे बच्चें को अलग किए जैसा तकलीफ़ महसूस कर रहा था।

महिलाएं तब से ही देवीमाँ की मूर्ति को प्रणाम करना शुरू कर दिए। भक्ति से तन्मयत्म प्राप्त कर रहे है। आदिरेड्डी, मुत्तालिंगम, काशय्या को बैठाकर बड़ा शाल ओंढकर हाथ में बाकी पैसे रखकर सम्मान किए। देवेन्द्र को भी नए कपड़े दिए।

सब लोग जय......जय....... का घोषनाद करते हुए, देवीमाँ की मूर्ति एवं ग्रामदेवता को गाड़ी में चढ़ाकर भजनों के साथ रवाना हुए।

भक्तों के कोलाहल के बीच, वेद मंत्रों के उच्चरण के बीच पहले ग्रामदेवता को प्रतिष्ठित किए। उसी मुहूर्त में देवीमाँ को ज़री के बार्डरवली पट्टू की साड़ी को सुंदरता से पहनाए। गले में चमक रहे आभूषण पहनाए। माथे पर एक रुपए के सिक्के के आकार का तिलक लगाकर नए निर्माण किए मंदिर में बैठाए।

मंगल चरण, बाजेगाने से ज़ोर के घोष होने पर वेद पंडित गले के राग टूटे जैसे वेद मंत्रो का उच्चारण करते हुए काशय्या द्वारा लगाए मोम को पैर से निकालकर मूर्ति को प्रतिष्ठित किए।

अचनाक देवीमाँ के आंखों में प्राण शक्ति प्रवेश की और मानो जैसे जैसे चकमते हुए भक्तों को आशीर्वाद दी। सब लोग संतोष एवं भक्ति भाव से साष्टांग प्रणाम करने लगे।

यह सब देख रहे काशय्या की आंखें भर आई। उसने देवेन्द्र को नज़दीक लेकर महिमावाली देवीमाँ को प्रणाम करने को कहा।

पिता के कहे अनुसार देवेन्द्र देवीमाँ की मूर्ति को सीधे देखकर, तन्मयता से देवीमाँ के पैरों को स्पर्श करके पैर पड़ी।

धीरे से बेटी को मंदिर से बाहर लाकर काशय्या अम्मा! देवेन्द्र देवीमाँ की मूर्ति कैसे बनी बेटी....? कहकर उद्वेग से पूछा। पापा! संतोष से, देवीमाँ की मूर्ति बिल्कुल मेरी माँ गोवींदम्मा जैसी है न आंखों को चक्र जैसे घुमाते हुए देवेन्द्र ने कही। काशय्या अपने ओठों तक आई बात को गले में दबाते हुए.....मेरे दिल से निकल कर मंदिर में देवता हो गई बेटा.....भरकर आ रहे दुःख को भीतर खींचते हुए कहा।

पतंग

मूल मलयालम : माधवीकुट्टी
अनुवाद : **डॉ. संतोष अलेक्स**
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
राजभाषा अनुभाग
भा कृ अनु प-के मा प्रौ सं, कोचिन

निरुद्देश्य वे दोपहर को कार चला रहे थे। वह किसी धनी व्यक्ति की पत्नी थी। उसके बच्चे थे जिनका ब्याह हो गया था। यदि वह कार्यालय में या किसी अन्य जगह पर मिलती तो वह उसे किसी मध्यम स्तर के होटल में ले जाता या फिर किसी सिनेमा घर। उसके बाद क्या करना है यह उसे मालूम था। वह कई औरतों से मिल चुका था। लेकिन वह स्त्री बाकी लोगों के समान नहीं थी। वह दूसरों को आकर्षित करने के लिए कुछ भी नहीं करती। उससे बात करने पर, चुटकुले कहने पर डर के मारे उसे पसीना निकलने लगता। वह उस स्त्री से प्यार करता था। यह उसे समझ में आया। लेकिन उसका गर्व उसे यह कहने नहीं देता था।

उसकी ज़िंदगी के अतीत में वह थी। लेकिन वह धनी स्त्री उसको मुसीबत में डाल रही थी। यदि वह आदमी उसके घर में ज़रीदार शीट, चांदी के बर्तन आदि न देखता तो खुद के घर और जिंदगी को क्या निचले स्तर का महसूस करता? इसलिए सभी बातों का दोषी वह नहीं है। वह दुबली थी और एक बार मेरे घर आकर उसने कहा, वासू, मेरी गुडिया को ले लो। पिताजी मेरे लिए दूसरा खरीदेंगे।

उसकी करुणा आदि किसी भी चीज की ज़रूरत उसे नहीं थी। एक साधारण घर की लड़की से शादी कर वह ज़िंदगी में खुश रह सकता था। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वह हमेशा उसके हृदय में थी। लेकिन उसने कभी उससे नहीं कहा कि मैं तुमसे प्यार करता हूँ, और किसी से प्यार नहीं करता। कार्यालय के स्पानसरशिप से पढ़ाई के लिए विदेश में रहने के बाद लौटकर भी उसने उससे मिलना चाहा। उससे शादी की मदद करने के लिए नहीं, बस यूं ही ....

आज बहुत गर्मी है न? स्त्री ने पूछा। स्त्री के बालों में एक बाल पका हुआ था। उसने न तो पाउडर लगाया था न ही काजल। वह सफ़ेद साड़ी पहनी हुई थी, गले में आभूषण नहीं थे। उसने उससे नफरत करने का निश्चय किया। क्या यह उसके घमंड को दर्शाता है? दूसरी औरतों के समान वह आभूषण क्यों नहीं पहनती? अन्य स्त्रियों की तरह वह कपड़ा खरीदने दूकान क्यों नहीं जाती? रोशनी को रोकनेवाले परदे से युक्त कमरे के अंधेरे में वह हिरण के समान यहाँ वहाँ रहकर दिन क्यों बिताती है? क्या वह गुडिय़ा है? क्या वह महंगा मोती है? उसका पति क्या समझता है? क्या वह अपनी पत्नी को मरते देखना चाहता है?

लेकिन ....

मैं वापस जाना नहीं चाहती। उसकी बातों ने विचलित कर दिया। स्त्री का माथा और होंठ के ऊपरी भाग से पसीना निकल रहा था। वह अब उसकी सेवा करना और उसे प्यार करना चाहती थी। लेकिन जब उसने बात की तो शब्द फूल बन गए।

चलो वापस चलते हैं। चार बजे कार्यालय पहुँचना है। कितनी देर यूं ही घूमते रहेंगे?स्त्री ने कुछ नहीं कहा। उसने कार मोड़ी। एक ओर समुद्र और दूसरी ओर ईमारतोंवाले एक गली में वे पहुंचे। चट्टानों पर खिले पौधों, दीवार पर किसी की भूली हुई एक जोड़ी चप्पल और क्रूरता के साथ चमकते सूरज को उन्होंने देखा। उनकी इच्छा थी कि वह क्षण अंतहीन गली के समान यूं ही पड़ा रहे।

''वासू, उस दीवार से कार टकरा दूँ''

''हाँ''

''तो हमें फिर वापस जाना नहीं पड़ेगा।''

वह चुप रहा। स्त्री उसकी आखों को देख रही थी और उसे समझ में आया कि वह रो पड़ेगा।

''वासू''

''हाँ''

''कुछ नहीं''

उसने कार रोकी, दाँई ओर का दरवाजा खोलकर पांव बाहर निकालकर बैठ गया। उनके बॉई ओर एक फौजी कैंप था। उसके दरवाजे पर एक संतरी बंदूक लेकर बैठा था। वह सो रहा था।

''वासू''

उसने उसकी ओर नहीं देखा। वह उसे अपनी ओर आकृष्ट करते की कोशिश कर रही थी।

मेरा तबादला हो रहा है नागपुर में

उसका रहना वह देखना नहीं चाहता था इसलिए वह सोये हुए एक संतरी को देखता रहा।

अच्छा

मुझे ज्यादा तनखाह मिलेगी। फिर यहां जितना खर्च भी नहीं होगा।

''कब जा रहे हो?''

''शुक्रवार को''

वह सीट पे लेट गई। उसने पांव अंदर कर कार का दरवाजा बंद कर दिया। अभी और ड्राईव करूँ? या फिर घर पहुंचने का समय हो गया है?

''चार बज गए है न? आपको कार्यालय जाना है न?''

उसकी कोई बात नहीं। मेरा बॉस मद्रास गया है। उनके लौटने तक मुझे थोड़ी छूट है।

वह हँस पड़ा और उसकी ओर देखता रहा। उसने पाकेट से सिगरेट का डिब्बा निकाला। उसमें से एक सिगरेट मुँह में रखा। सिगरेट पीते समय उसे लगा कि उसका हाथ अकारण कांप रहा है।

साधारण तरीके में एक आदमी औरत को बाहर ले जाते समय क्या क्या करता है?

उसे चूमना? उसे ....

हां, कुछ भी कर सकता है

''मुझे छूते क्यों नही, मुझसे नाराज हो?''

''नाराजगी की बात नहीं। लेकिन ......''

''लेकिन, क्या?''

उसने कार फिर स्टार्ट किया। समद्र के किनारे दीवार के पास के बेंच पर एक आदमी सो रहा था।

''वासू''

''हाँ।''

''मुझे अच्छे होटल में ले चलो। कहीं भी ....''

''छिः ऐसा मत कहो। तुम ऐसी नही हो''

''फिर मैं कैसी हूँ''

मुझे नहीं मालूम। तुम ही बताओ। पिछले पंद्रह सालों के बारे में मुझे बताओ। तुमने शादी करने का निर्णय कब किया? क्या वह तुमसे प्यार नहीं करता? तुम मुझे क्यों तड़पा रही हो? यह सब

बताओ।

''मैं क्या बताऊं? कि मैं खुश हूँ? मेरा पति मुझसे प्यार करता है। फिर एक वेश्या के समान मैं ....''

नहीं। तुम ऐसा कहकर मुझे अपमानित कर रही हो

''हाँ। अच्छा''

''तुम वेश्याओं के समान मेरे पास नहीं आई?''

''फिर''

तुम वेश्या के समान अपने पति के पास गई। तुम मेरी थी। लेकिन तुमने संपति और पद के लिए .....

''यह सब झूठ है।''

हाँ, यही सच है।''

''क्या मैं तुम्हारी थी? बचपन से मैं तुम्हें जानती थी। इसका मतलब यह नहीं कि मैं तुम्हारी हूँ।''

''बस, मैं तुम्हें घर छोड़ दूंगा। मेरे पास बहस करने के लिए वक्त नहीं है।''

उसने नीरस भाव से कार की रफ्तार बढाई। उन्हें लगा कि स्त्री ने उसका अपमान किया है।

वह उससे फिर मिलना नहीं चाहा। दुनिया के किसी कोने में वह अपने पिता और पति के साथ रह सकती थी? वह बंबई क्यों पहुची? वह क्यों मेरी दोस्त की पत्नी बन गई? ड्राइंग रूम में प्रकट हुई? उसने फिर से वह शाम याद की। सौ बार से भी ज्यादा उसने उस शाम को याद किया। बार बार वह उस शाम को याद करता रहा। तुम कविता लिखते हो? उसके पति ने पूछा। तो फिर तुम निश्चय ही मेरी पत्नी से मिलो। वह भी कविता पसंद करती है। चाय का प्याला मेज पर रखकर वह अंदर चला गया।

स्त्री जब कमरे में आई वह कमरे में नजर दौड़ा रहा था। खिड़कियों में लगे क्रीम रंग के पर्दे, सोने के रंग के सोफा के कपड़ें, सफ़ेद फूलों से भरे तांबे के बर्तन; वह जब दीवार पर लगे आयँल पेंटिग को देखा रहा था तो उसने कहा नमस्ते।

उसके पैरों की उंगलियों पर उसकी नज़र पड़ी। लंबी, दुबली और आपस में टकराती हुई पैर की उंगलियां। चमड़ें की चप्पल और ज़रीदार साड़ी देखकर वह सोफे से उठा।

मेरी पत्नी

उसके पति ने गर्व के साथ कहा।

बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर

वह हँस पड़ी। उसकी हंसी ने उसे डरा दिया।

मैं पहले से ही जानती हूं। हम लोग एक ही गांव के है।

उसके बाद की घटनाओं को उसने याद नहीं किया। उसके पति शहर में चलनेवाले एक मुकदमे के बारे में और सवाल करनेवाले के झूठे चेहरे आदि के बारे में बात करते थे। ये ही बातें उसे याद थी। वह मुझे देखती रही। बिना शर्म के। उसके बाद उसका चेहरा मन में रह गया।

फिर मेरा और उसका परिचय गहरा कैसा हो गया? एक दिन उसके घर में खाने पर गया तो वह कविता की पुस्तक लेकर उसके पास आया। तब दरवाजे के पास खड़ी होकर उसने कहा क्या मुझे कल भी मिलना है? पता नहीं। पता नहीं जो भी हो उससे मिलना, उसे अपने कार में चढाकर बिना किसी लक्ष्य के घूमना, यह सब उसके दैनिक काम का हिस्सा बन गया। इससे मुझे क्या मिला? क्या मैंने एक विवाहित औरत के स्नेह को चुरा लिया। मैं उसके लिए वक्त बिताने का एक माध्यम था। उसे छोड़कर यदि मैं किसी अन्य शहर चला जाऊँ, वह थोड़े दिन खुद को आश्वस्त कर जिएगी। अभी उसे दोपहर को घुमानेवाला कोई नहीं होगा। उस घर में अकेली बैठकर वह कविता लिख रही होगी। मृत्यु के बारे में और पतंग में बांधे गए धागे के समान उसकी यादों के बारे में। उसे लिखने दो। मैं उससे ज्यादा मिलना नहीं चाहता था।

"क्या सोच रहे हो ?"

"तुम मृत्यु के बारे में कविता क्यों लिखती हो ?"

"यूं ही लिख डाली, खास कारण नहीं"

खुद के अनुभवों को लेकर कविता नहीं लिखनी चाहिए। तब कविता कृत्रिम हो जाएगी। तुम्हें जिस चीज की जानकारी है उसके बारे में लिखा करो। पच्चीस साल की उम्र में क्या कोई मृत्यु के बारे में सोचेगा?

"लाइलाज बीमारीवाले मरीज तो मृत्यु के बारे में सोचते हैं न?"

"मरीज सोच सकता है। लेकिन तुम्हें डर क्यों लगता है?"

"तुम तो धनी हो, सुन्दर हो, स्वस्थ हो।"

वह हँस पड़ी। उसकी हँसी आईने में प्रतिबिंबित हुई। उसने देखा कि उसके होंठ विवर्ण थे। उसकी प्रत्येक हरकत को वह मन में दबाए रखा। उसको लगा कि दो दिन के बाद उसे आसानी होगी। यादें हमेशा उनके मन में न मुरझानेवाले फूलों के समान हो गई।

"वासू"

''हाँ?''

''मैं उतनी ईमानदार नहीं हूं जैसा कि तुम सोचते हो। तुम्हें पता है कि मैं तुम्हारे पीछे क्यों पड़ी हूँ।''

''ऐसा मत कहो''

''फिर मैं क्या करूँ? रात को तुम्हारे बारे में सोचकर बिस्तर पर करवटें बदलती रहूँ?''

''मैं यह विश्वास नहीं कर सकता''

''तुम सच्चाई को बर्दाश्त नहीं कर सकते। बस इतना विश्वास करो कि मैं सुशील हूँ''

''हाँ, सच्चाई यही है कि मैं बुध्दू हूँ''

लाल पर्दोंवाले उस होटल के कमरे में रहने पर वह खुद से कहता रहा। यह सच्चाई नहीं है। वह वेश्या के समान अभिनय कर रही है। ऐसा मानने के लिए उसके पास पर्याप्त कारण थे। उसकी नज़र में वह एक अच्छी औरत थी। कुलीन, सुन्दर, सुशील, बुद्धिमती ...... इस प्रकार सभी गुणों से युक्त उसका स्नेह जब वेश्याओं के समान व्यवहार करने लगा तो उसका हृदय चकनाचूर हो गया। अभी उससे जुदा होने से अब क्या होगा?

खिड़कियों के परदे हवा में हिल रहे थे। वह अचानक बिस्तर से उठकर नीचे लेट गई। ''यह क्या पागलपन है ? नीचे क्यों लेटी हो?''

मुझे गर्मी लग रही है। उसने उसे उठाने की कोशिश की। उसके हाथ पांव ठंडे हो गए।

''तुझे क्या हो गया?'' वह चुप रही। उसी गाड़ी में चढ़ते वक्त उसने पूछा तबीयत ठीक नहीं है क्या?

वह सीट का सहारा लेकर कार में लेट गई।

''मैंने आज का दिन बरबाद किया न?''

''क्या हो गया तुम्हें? चक्कर आ रहा है क्या?''

वह धीमी आवाज में हँस पड़ी। उसने कार स्टार्ट की तो स्त्री ने कहा

''मैं बुरी औरत हूँ''

उसे लगा कि इसका उत्तर देने की जरूरत नहीं है। अचानक वह उसे ज्यादा चाहने लगा। उसने निश्चय किया कि पिछले आधे घंटे के बारे में किसी से कुछ नहीं कहना चाहिए। मैंने एक स्त्री को पटाया। मैंने एक स्त्री को होटल के कमरे में ले गया। स्त्री ने मुझसे कई बार कहा कि वह मुझसे प्यार करती है। वह थक गई तो मैंने ही उसे साड़ी पहनाई .... मैं मित्रों से यह सब नहीं कहूँगा। वह गिरी लेकिन जीत उसकी हुई।

''वासू''

''हाँ।''

''मुझे छोड़कर नहीं जाओगे न?''

''नहीं''

''सच?''

''हाँ, सच।''

बीच में लोग आने लगे। पहियोंवाली छोटी सी गाड़ी में नौकरानियां बच्चे को ढकेल रही थीं। कुल्फीवाला कुल्फी बेच रहा था। कुत्तों के साथ टहलने निकले चपरासी, गुब्बारे बेचनेवाला, बैलगाड़ी .... वे सब धीरे धीरे पीछे छुटते गए। आकाश में बादल छाने लगे। उसे लगा कि स्त्री के बिना उसकी ज़िंदगी शून्य है। वह उसकी प्रेमिका ही नहीं, बहन, बेटी सब कुछ थी।

''वासू''

''हाँ।''

''मुझे प्यास लगी है''

''मुझे भी''

''घर चलें''

''नहीं''

''उसने उसके कंधे पर सिर रखा और कहा मैं थक गई हूँ।''

''हाँ।''

मैं हमेशा ऐसी ही हूँ, धूप में चल नहीं सकती, सीढ़ियां चढ़ नहीं सकती, बच्चों का जन्म देना भी मुझसे नहीं हो पाता।

यह सब कब से है? बचपन में तो तुम्हें कोई समस्या नहीं थी। ऐसा कभी था ही नहीं। मुझे तो दिल की बीमारी थी। उसने उसके बालों में उंगलियां फेरी।

''डरो मत, कुछ नहीं होगा।''

''मुझे डर नहीं है।''

उसके घर के पास पहुंचने तक वह सो गई। साधारणतः चार घरों के पहले कार रोककर वह उससे विदा लेता। उसको लगा कि अब ऐसा करने की ज़रूरत नहीं। ज़रूरत पड़ेगी तो उसके पति को

असलियत बताकर उसे वह अपने साथ ले जाएगा।

घर के पास पहुंचते ही वह कार से उतरी और हँसी। बगीचे में उसका पति आरामकुर्सी में लेटा हुआ था। वह कार से बाहर निकली।

''कल, हाँ। सच हाँ।''

कार में बैठे बैठे उसने देखा कि वह पति की बाहों में गिर रही है। उसे लगा कि एक दुबली लड़की यह कह रही है, वासू इस गुडिय़ा को ले लो। क्या उसका प्यार गुड़िया के समान था?

वह दुखी होकर कमरे में पहुँचा। बिस्तर पर उसकी कविता की पुस्तक पड़ी थी। वह केवल जूते उतारकर बिस्तर पर लेट गया और कविता पढ़ने लगा।

शायद किसी दोपहर को खत्म हो रहे गीत के समान मैं भी खत्म हो जाऊँगा, मृत्यु असाधारण है। तुम्हें कोई घाटा नहीं होगा। लेकिन पतंग के पीछे बंधे धागे के समान यादें मेरे साथ उठती नहीं। यह सब मेरा घाटा है।

आकाश को जलानेवाले गुलमोहर के पेड़, मृत लोगों की आत्मा सी मूक चलनेवाले शाम की नाव, प्यार की खोज में भटकता मनुष्य, सब कुछ ....

उस पुस्तक के साथ वह बहुत देर तक लेटा रहा। अंत में बेडरूम में घना अंधकार छा गया।

जब ठंड लगी तो उठकर आखें पोंछा और चेहरा साफ करने गुसलखाने की ओर गया। उस दिन से वह भी एक प्रेमी बन गया।

गौतम बुद्ध के अनमोल विचार

हम जो कुछ भी हैं वो हमने अब तक क्या सोचा इस बात का परिणाम है। यदि कोई व्यक्ति बुरी सोच के साथ बोलता या काम करता है, तो उसे कष्ट ही मिलता है। यदि कोई व्यक्ति शुद्ध विचारों के साथ बोलता या काम करता है, तो उसकी परछाई की तरह खुशी उसका साथ कभी नहीं छोड़ती।

- हजारों खोखले शब्दों से अच्छा वह एक शब्द है जिससे शांति मिले।
- सभी बुरे कार्य मन के कारण उत्पन्न होते हैं। अगर मन परिवर्तित हो जाये तो क्या अनैतिक कार्य रह सकते हैं?
- अतीत पर ध्यान मत दो, भविष्य के बारे में मत सोचो, अपने मन को वर्तमान क्षण पर केन्द्रित करो।
- स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है, संतोष सबसे बड़ा धन है, वफादारी सबसे बड़ा सम्बन्ध है।
- जैसे मोमबत्ती बिना आग के नहीं जल सकती, मनुष्य भी आध्यात्मिक जीवन के बिना नहीं जी सकता।
- तीन चीजें ज्यादा देर तक नहीं छुप सकती, सूरज, चंद्रमा और सत्य।
- अपने मोक्ष के लिए खुद ही प्रयत्न करें। दूसरों पर निर्भर न रहें।
- तुम अपने क्रोध के लिए दंड नहीं पाओगे, तुम अपने क्रोध के द्वारा दंड पाओगे।
- किसी जंगली जानवर की अपेक्षा एक कपटी और दुष्ट मित्र से अधिक डरना चाहिए, जानवर तो बस आपके शरीर को नुकसान पहुँचा सकता है, पर एक बुरा मित्र आपकी बुद्धि को नुकसान पहुँचा सकता है।
- चाहे आप जितने पवित्र शब्द पढ़ लें या बोल लें, वो आपका क्या भला करेंगे जब तक आप उन्हें उपयोग में नहीं लाते?
- मैं कभी नहीं देखता कि क्या किया जा चुका है, मैं हमेशा देखता हूँ कि क्या किया जाना बाकी है।
- बिना सेहत के जीवन नहीं है, बस पीड़ा की एक स्थिति है मौत की छवि है।

हम जो सोचते हैं, वो बन जाते हैं।

भा कृ अनु प-केन्द्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान, कोचिन को उत्तम राजभाषा कार्यान्वयन के लिए 2015-16 का नरकास पुरस्कार प्राप्त हुआ

डॉ. सुशीला मैथ्यू, प्रभारी निदेशक, केन्द्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान, कोचिन एवं विभागाध्यक्ष, जैव रसायन एवं पोषण प्रभाग, के मा प्रौ सं, श्री आर.सी. सिन्हा, निदेशक, सिफनेट, कोचिन से पुरस्कार ग्रहण करते हुए।